

महामति चाणक्य राजदूत बने

[हास्य-व्यंग्य निबन्ध-संग्रह]

लेखक

डा० बरसानेलाल चतुर्वेदी

एम. ए., पी-एच. डी.

प्रकाशक

हिन्दी साहित्य संसार

पटना-४

::

दिल्ली-६

1207 6-104 3
6-104 3

Ray

महामति चाणक्य राजदूत बने

[हास्य-व्यंग्य निबन्ध-संग्रह]

लेखक

डा० बरसानेलाल चतुर्वेदी

एम. ए., पी-एच. डी.

प्रकाशक

हिन्दी साहित्य संसार

पटना-४

::

दिल्ली-६

प्रकाशक :

हिन्दी साहित्य संसार

दिल्ली-६

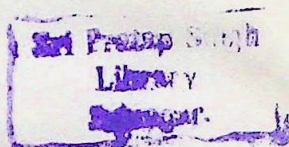
ब्रांच :

खजाऊची रोड, पटना-४

Acc. No. 28013

Cost Rs. 4.37

Date 28.3.67



H84
B28M

द्वितीय संस्करण, २६ जनवरी, १९६३

मूल्य :

चार रुपये सैंतीस नये पैसे (४.३७)

मुद्रक :

अशोक मुद्रण कला द्वारा

दमयन्ती प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली में छपा

अपनी ही श्रीमती जी
श्री द्रोपदी चतुर्वेदी
को
सस्नेह भेंट

भूमिका

सर्वप्रथम उस “नीली छतरी वाले” को थैंक्स देता हूँ जिसने बचपन से ही मुझे विनोदी स्वभाव का बनाया। विद्यार्थी जीवन में साथी इसलिए नाराज रहते थे कि मैं उनकी विकृतियों का मजाक बनाने से नहीं चूकता था। मुहूर्तिमी सूरत वाले अध्यापक भी चिढ़ते थे क्योंकि उनको भी मैं चिढ़ाता था। जिन अध्यापकों में “सेन्स आफ ह्यूमर” था वे मेरी हास्य-वृत्ति को पसन्द करते थे तथा मुझे प्रोत्साहित करते थे।

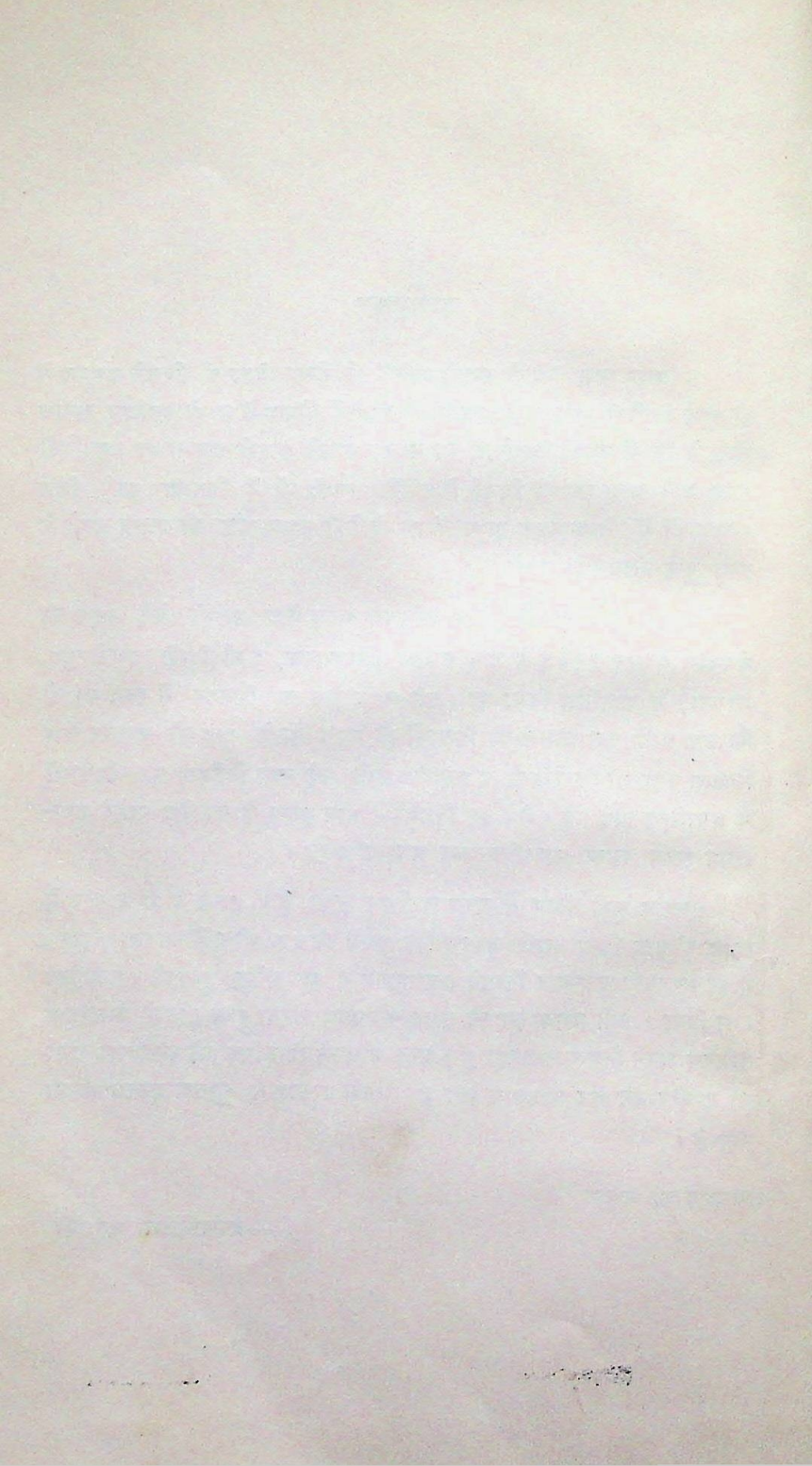
“कामर्स का विद्यार्थी” मेरा सर्वप्रथम व्यंग्य लेख था जो मेरे स्कूल की मैगजीन में सन् १९३५ में डा० सत्येन्द्र (प्राध्यापक, मुंशी हिन्दी इन्स्टीट्यूट, आगरा) ने प्रकाशित किया था। इस व्यंग्य लेख का शिकार मैं स्वयं था जो कि उस समय एक कामर्स का विद्यार्थी ही था। इसके बाद तो बराबर लेख लिखता रहा जो कि रेडियो से प्रसारित होते रहे तथा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रमाणित होते रहे। मेरे इन निबंधों में आप हास्य के सब भेद पायेंगे यथा-स्मित हास्य, व्यंग्य, वचनविदग्धता तथा वक्रोक्ति।

सचमुच मुझे जीवन में हास्य फलीभूत हुआ है। हास्य ने ही मास्टर से ‘डाक्टर’ बना दिया यद्यपि जुकाम ठीक करने की दवा भी नहीं जानता। हास्य ने ही सरकारी पुरस्कार दिलाये तथा हास्य ने ही अनेक पुस्तकों का प्रणेता बना दिया। उसी हास्य रस को साष्टांग प्रणाम करता हुआ पाठकों के सम्मुख सविनय अपने निबन्ध रख रहा हूँ। अन्त में अपने प्रिय मित्र श्री रामकृष्ण शर्मा को गम्भीर बन कर धन्यवाद देता हूँ जिनके उत्साह से पुस्तक प्रकाश में आ रही है।

राम जीद्वार, मथुरा

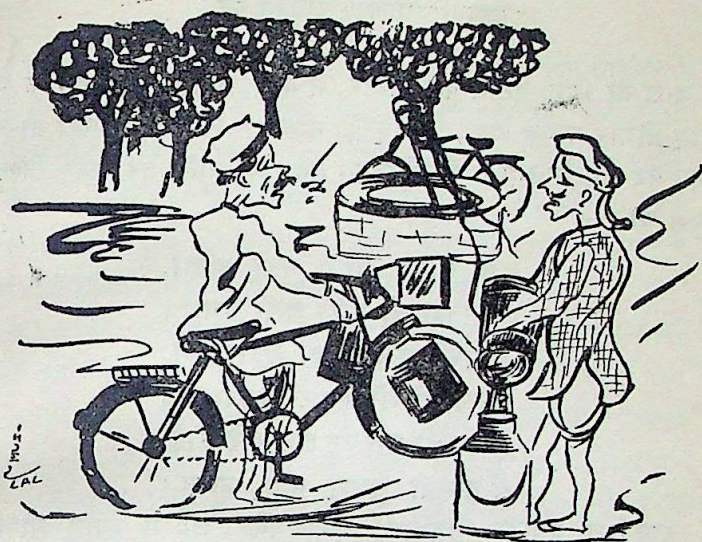
१-१-६२

—बरसानेलाल चतुर्वेदी



क्या कहाँ

१. दुग्ध-विभूषण श्यामू	६
२. ये भोली-भाली शक्ल वाले	१६
३. महामति चाणक्य राजदूत बने	२१
४. पलू की पावन स्मृति में	२६
५. साइकिल की चोरी	३०
६. दफ्तर में देर हो गई	३६
७. कविवर 'पूँछेन्द्र' जी	४४
८. बारात की बात	५०
९. एक कामर्स का विद्यार्थी	५६
१०. चाटुकारिता भी एक कला है	५८
११. ये अवसरवादी नेता	६५
१२. श्री मुफ्तानन्द जी	६८
१३. मोदक-महिमा	७३
१४. कंजूस और कविगण	७७
१५. गाली और कविता	८२
१६. रेडियो रिपोर्टें	८६
१७. जे बिनु-काज दाहिने बायें	९१
१८. प्रेम का प्रथम अध्याय	९६
१९. डा० भाऊलाल जी	१०१
२०. आडीटर का शुभागमन	१०६



“जल्दी करो, रास्ते में नहर भी तो पड़ेगी, वहाँ भर लेंगे।”

दुग्ध-विभूषण श्यामू

नास्तिक लोग चाहे मानें या न मानें पर मैं तो कहता हूँ और दावे के साथ कहता हूँ कि भगवान हैं और बड़े दयालु हैं और साथ में बुद्धिमान अवश्य ! बुद्धिमान इसलिये कहता हूँ कि उन्होंने ग्रादमी नाम की जो चीज़ बनाई और उसमें जो किस्में दीं, क्या-क्या अद्भुत हैं कि “केशव कहि न जाय का कहिए।” उदाहरण के लिये आप हमारे श्यामू दूध वाले को ले लीजिए ! सुबह पाँच बजे ही साइकिल पर दूध लिये तैयार ! आये और बिगुल बजाकर सिंहनाद किया। चाहे ठण्ड हो या गर्मी, ऊँची धोती, मैला कुरता, सर पर अंगोछा बाँधे उपस्थित है, कितना सरल, कितना सीधा—“सरल जीवन, उच्च विचार” वाले सिद्धान्त की प्रतिमा।

बचपन में माँ दूध पिलाती है और बड़े होने पर दूध वाला। तनिक कल्पना कीजिए कि जनवरी का महीना है, कड़ाके की ठण्ड पड़ रही है सुबह उठते ही चाय चाहिए, बिना दूध की चाय मानों बिना नमक

की दाल या बिना पेट्रोल की मोटर, मैं यही मनाता रहता था कि कहीं श्यामू बीमार न पड़ जाय, इसे कहीं नज़र न लग जाय नहीं तो चाय समय पर कैसे मिलेगी। मैं छोटा था तब दूध वाले पर कुछ पंक्तियाँ लिखी थीं :—

“दूध वाला अगर नहीं आता,
चाय का भी मज़ा चला जाता।
हमारी उम्मीदों का सहारा वो,
पतलों को मोटा करने वाला वो।
अगर जो उस पर शक करे कोई,
ये हमारी समझ नहीं आता।”

एक दिन हमारी श्रीमतीजी बोलीं कि “जी ये श्यामू तो बड़ा पतला दूध दे जाता है” मैंने कहा “तुम तो हर बात में शक करती हो” श्यामू और इस तरह की बात करे सर्वथा असम्भव है। अच्छा कल वह आवे तब याद दिलाना उससे पूछूँगा।

दूसरे दिन श्यामू आया। मैंने उससे पूछा “भाई क्या बात है?” बोला “बाबूजी बहूजी को तो दूध की पहचान नहीं है अभी तक भैंस का दूध देता था, दो दिन से गाय का लाता हूँ। बाबूजी आप तो जानते हैं कि गाय का दूध तो पतला होता है, हाँ दो दिन और रुक जाइये, मेरी दूसरी भैंस गाँव से आ रही है, भैंस का फिर से प्रारम्भ कर दूँगा। मैंने उनसे कहा “जी देखो, श्यामू से बातें होने पर मालूम पड़ा कि असली बात क्या है” कुछ दिन इस प्रकार चलता रहा। एक दिन दफ्तर से लौटा तो देखा कि श्रीमती जी का टेम्परेचर चढ़ा हुआ है, आते ही बोलीं “तुम श्यामू श्यामू चिल्लाते हो, नित्य वही सफेद पानी! कभी कुछ कह देता है, कभी कुछ कह देता है। ऐसे दूध से दूध न लेना ही अच्छा! मैं जब कहती हूँ तो तुम कह देते हो कि मैं शक करती हूँ।” उन्हें तो मैंने यह कह कर टाल दिया कि अच्छा कोई दूसरा इन्तजाम करूँगा और सोचने लगा कि आजकल “ब्लैक मारकेट” का नाम तो अवश्य सुनता हूँ पर ‘White market’ का नाम आज ही सुन रहा

हूँ। क्या श्यामू भी समय के फेर में पड़ गया। दूध देखा तो वास्तव में सफेद पानी। बड़ा परेशान ! मैंने प्रण किया कि सत्य का पता लगाऊँगा। कोई मशीन ऐसी नहीं मिली जो दूध और पानी को बिलकुल अलग-अलग कर दे ! मैंने चुपचाप श्यामू के गांव जाने की ठानी। क्या देखता हूँ कि श्यामू कुएं पर खड़ा पानी खींच रहा है। दूध के बर्तन से सुशोभित साइकिल किनारे पर रक्खी है। मैं पेड़ की आड़ में खड़ा देखता रहा। मैंने सोचा शायद पानी पीकर जायगा। उसने एक बाल्टी खींच कर दूध वाले बर्तन में मिलादी। इसके बाद दूसरी और फिर तीसरी बाल्टी कुएं में डालने को ही था कि उसका दोस्त बोला “देखो, जल्दी करो देर हो रही है, रास्ते में नहर भी तो पड़ेगी, वहां भर लेंगे।” सच कहता हूँ जी मेरे काटो तो खून नहीं। यह श्यामू जो देखने में ऐसा भोला भाला, जिसके बारे में ऐसे सुन्दर भाव रखता आया हूँ, वह ऐसा निकलेगा। किसी ने सच कहा है “भोली भाली शक्ल वाले होते हैं जल्लाद भी” मैं रास्ते में सोचता आ रहा था कि सरकार “Black market” को रोकने के लिए इतना कर रही है लेकिन इस “White market” करने वालों से कुछ नहीं कहती।

शास्त्रों में पढ़ा है हंस नीर-क्षीर-विवेकी होता है। दोस्तों से पूछा कि “भाई ये हंस कहां से मिलते हैं ?” वे बोले “क्या तुमने भंग खाई है कहीं होते होंगे, तुम्हें क्या करना है।” मैं बोला “भाई एक हंस पालना चाहता हूँ जो घर पर दूध और पानी को अलग-अलग कर दिया करे। फिर मैं दस पांच दूध वालों को सजा तो करा दूँ।” वे बोले “अपना काम करो; इस चक्कर में क्या लोगे। देखो यह तो इस संसार का प्रतीक है। माया और ब्रह्म को जैसे अलग करना कठिन है उसी प्रकार दूध वाले के दूध से पानी को अलग करना कठिन है। दूध वाला दर्शन-शास्त्र का परिणित होता है और मनुष्यों के अज्ञान से लाभ उठाता है। इसलिए पहले माया और ब्रह्म के अन्तर को पहचानो तब दूध वालों से अटकने की बात करना।” मैंने सोचा “बड़े-बड़े ऋषि मुनि ही माया-ब्रह्म के भेद को नहीं जान पाए हैं छोड़ो इस भ्रम को।”

घर जाकर श्रीमती जी से बोला “भाई तुम ठीक कहती हो। आज तो आंखों से देख आया, अब क्या करना चाहिए।” वे बोलीं “दूध पीने से ही क्या हो जायगा।” मैंने कहा “नादानी मत करो, आयुर्वेद शास्त्र में दूध की महिमा, काव्यों में दूध को अमृत कहा है, इसके बिना गुजर कैसे।” तुलसीदास जी ने कहा है “धीरज धर्म मित्र अरु नारी— आपद काल परखिए चारी” घबराना नहीं चाहिए मेरी समझ में एक बात आती है, पास में जो दूध वाला रहता है उसके यहां मैं स्वयं चला जाया करूंगा और आंखों के सामने दूध कढ़वा कर लाया करूंगा। मैं जाता हूँ उससे बात करके आता हूँ कि किस भाव देगा और किस समय आया करूँ। श्यामू आए तो उसका हिसाब कर देना और कहना कि अब हम पर कृपा करे।

ननकू के पाँच भैंसें और चार गायें थीं। बोला “बाबूजी शाम को पाँच बजे काढ़ता हूँ। आप अपने सामने कढ़वा ले जाया करें। एक रुपये सेर के दाम लूंगा। साहब दफ्तर से लौट कर आते ही और सब काम छोड़ कर हाथ में लोटा लेकर ननकू साहब की हाज़िरी देने जाने लगा। एक दिन मैं पहुँचा ही था कि ननकू बड़ी शान से मुस्कराते हुए बाल्टी लेके आए। आज मैं तनिक नजदीक पहुँच गया था। क्या देखता हूँ कि बाल्टी में निर्मल-जल-देवता पहले से ही विराजमान थे। पूछने पर दांत निकाल कर बोला “अरे बाबूजी, जल्दी में पानी वाली बाल्टी निकाल कर ले आया” और शान से कहने लगा, “बाबूजी उधार मांगने वाले यह तो कहते हैं कि पानी मिला हुआ दूध क्यों देते हो, पर आप ही बताइये हुज़ूर मेरे ये जानवर कहीं इस बात को मान सकते हैं कि यह बिना खाए उधार दूध दे दिया करें। गाय भैंस तो उधार नहीं समझतीं। इन्हें तो रोज़ खिलाऊँ तो दूध दें वरना हरो भण्डी दिखा दें। बड़ी परेशानी है सरकार।” दो एक दिन देरी से पहुँचा कि वही चक्कर। पूछने पर बोला “बाबूजी आप ही अकेले थोड़े ही हैं और भी तो लोग आते हैं वे कहां तक खड़े रहें।” दफ्तर जाने को अगर देर हो जाय तो इतना नुकसान नहीं होता जितना कि दूध वाले के यहां देर से

पहुँचने पर ।

नित्य संध्या के नये-नये प्रोग्रामों को छोड़ना पड़ता है। क्लब के दोस्त बोले, “यार तुम भी क्या दूध के चक्कर में पड़े हो, न कहीं आना न कहीं जाना।” परन्तु मैंने तो प्रण किया था कि दूध बिलकुल शुद्ध पीऊँगा। कभी सोचा बच्चे को भेज दिया करूँ, पर सोचा जब ये मेरी आंखों में धूल डालने से ही नहीं चूकता तो बच्चे बेचारे की क्या चलाई। किसी ने ठीक कहा है “दर्द का हृद से गुजरना है दवा हो जाना।”

मैं भी तंग आ गया था। निश्चय किया कि भविष्य में पास के हलवाई से गम किया हुआ दूध ही ले लिया करूँगा। न समय की पाबन्दी और न गर्म करने का भ्रंश। लेकिन साहब, ये तो श्यामू और ननकू के भी चाचा निकले। दूध वाले दूध दे जाते हैं इन्हें और फिर रही सही पानी की कमी को दूर कर देते हैं ये। एक दिन हलवाई का लड़का एक पुड़िया में से कुछ सफेद चीज दूध में डाल रहा था। मैं समझा कोई दूध को स्वादिष्ट बनाने का मसाला होगा पर हाथ से छूकर देखा तब मालूम हुआ कि अरारोट था। उफ़, मैं समझा कि तभी यह दूध ऐसा गाढ़ा मालूम पड़ता है। मैंने कहा “पश्चिमी आविष्कार करने वालों ने क्या कमाल किया कि एक इंजन बना दिया या रेडियो बना दिया और वह भी वर्षों अनुसन्धान करने के बाद। धन्य हलवाई महाराज, आपका यह अरारोट का आविष्कार स्टीवेन्सन के आविष्कार से कहीं महान् है।” मैंने उनको भी प्रणाम किया।

हताश होकर ईश्वर को याद करने लगा कि “हे भगवान्, तैने द्रौपदी का चोर बढ़ाया, गज और ग्राह की लड़ाई में गज को सहारा दिया, “जब जब भीर परी भक्तन पर” तब ही आपने रक्षा की। प्रभु मैंने ऐसा कौन सा अपराध किया है। इसी उधेड़-बुन में था कि बच्चे ने आकर कहा “वाचा, डेरी फार्म की दुकान अपने पास ही खुल गई है, कूपन मिल जाते हैं, मैं ही ले आया करूँगा।”

दूसरे ही दिन श्रीमती जी ने सुनाया कि तुम्हारा मुन्ना कल दूध

लाते वक्त दूध भी फेंक आया और बोतल भी तोड़ आया। मैंने कहा—
“काने के ब्याह को सौ जोखों।” दो दिन भी नहीं हुए कि दो रुपये की
चपत और पड़ी। तीसरे दिन मैं गया, देखा, वहां तो सिनेमाघर के
बुकिंग-आफिस के सामने जैसी भीड़ है। मैं भी ‘ब्यू’ में खड़ा हो गया।
पूरे ४५ मिनट बाद मेरा नम्बर आया और मैं दूध लेकर लौटा।

वे चूल्हा लिए बैठी थीं। तपाक से पूछने लगीं “किससे बातें करते
रह गए!” मुझे और भी क्रोध आया कि इतनी देर परेड करने के बाद
तो दूध लाया हूँ और इनके दिमाग में ही नहीं आता। और ऊपर से
कहती हैं कि तुमसे तो मुन्ना ही जल्दी ले आता है। भाई साहब, सच
मानिए कि यह क्रम एक सप्ताह भी नहीं चल पाया और दूध का प्रश्न-
वाचक चिन्ह फिर अपना विराट रूप धारण करके सामने आ खड़ा
हुआ।

घर में सभा हुई। सर्व सम्मति से यह निश्चय हुआ कि गाय घर
में ही पाली जाय। प्रत्येक हिन्दू का धर्म है कि गौ सेवा करे। यह भी
निश्चय हुआ कि सुबह पानी कौन पिलाएगा, शाम को सानी कौन
करेगा। सफाई कौन करेगा। गाय खरीद ली गई। दूध दुहने वाला
रख लिया गया। पहले दिन दफ्तर से लौटा तो घर में भगड़ा हो रहा
था। पास वाले किरायेदार के बच्चे को गाय ने सींग मार दिया था।
जाकर मैंने मामले को शान्त किया। श्रीमती जी की ड्यूटी शाम को
सानी करने की थी। उन्होंने दो दिन तो की तीसरे दिन उनकी पसली
में दर्द हो गया। सानी करना मैंने स्वयं प्रारम्भ कर दिया।

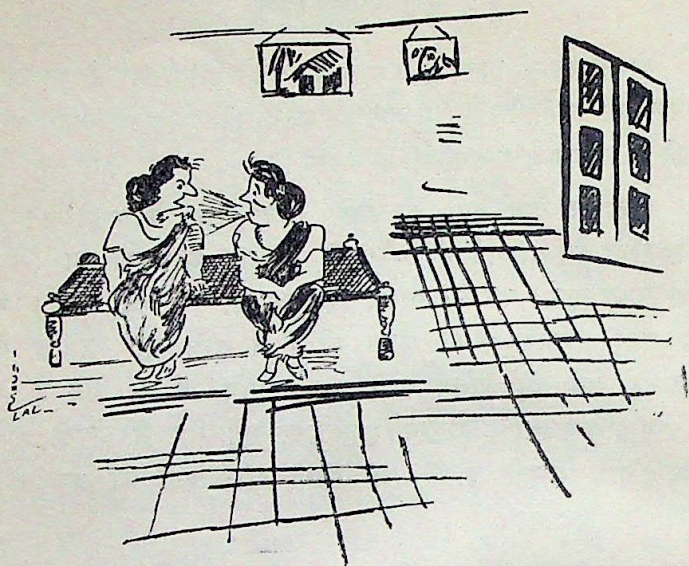
एक दिन बछड़ा खो गया। चार घंटे में उसका पता लगा। दूसरे
दिन सुबह उठते ही पता चला कि गाय गायब है। मौहल्ले वालों से
पूछा परन्तु कुछ पता नहीं लगा। लोग बोले “कांजीहौज जाओ, वहां
पता चलेगा।” पहुँचा तो देखा कि देवी जी विराजमान हैं। मैं अपट्ट-
डेट बाबू, अब वहां से उसे लेकर कैसे आऊँ। पहले कांजीहौज का
बिल चुकाया, एक रुपये में एक आदमी किया। आगे-आगे गाय और
पीछे-पीछे मैं।

दोस्तों को तो दिल्लगी सूझती है, लगे पूछने “कहां से आ रहे हो” मैंने कहा “कांजीहौज़ से” मुस्कराकर कहने लगे, “अब तक वहां जानवर जाते थे. अब क्या आदमी भी जाने लगे।”

लौट कर गाय देवी को विदा किया साथ में बछड़े को भी। श्रीमतीजी तंग आ गईं थीं और मैं भी तंग आ गया था कि अब क्या किया जाय। अब मेरे सामने प्रश्न यह था कि क्या करूँ। श्यामू का नाम बराबर सामने आता था। मैं सोच रहा था कि भीष्म पितामह जैसे दृढ़ प्रतिज्ञ इसी भारत भूमि में हो गये हैं, सत्य हरिश्चन्द्र ने वचनों के कारण कितने दुःख सहे, क्या मैं अपनी प्रतिज्ञा तोड़ दूँगा। श्रीमती बोलीं “जी किसी और बात का प्रण करना, छोड़ो इस ज़िद को।”

श्यामू को फिर बुलाया और कहा “भैया मुझको और न तुझको ठौर।” कल से तुम्हीं दूध दे जाया करो।”





“मांजी, बहू कहती थी कि अभागी की एक आँख ऐं चातानी है। सुबह मुँह देख लेती हूँ तो दिन-भर खाना भी नहीं मिलता।”

ये भोली-भाली शक्ल वाले !

चार लोगों को भिड़ाने में मजा आता है। भाई लपकेन्द्रजी कवि हैं और मेरे मित्र हैं। उन्हें कोई कवि नहीं मानता लेकिन मैं मानता हूँ। उनकी कविता कोई नहीं सुनता किन्तु मैं सुनता हूँ। आते हैं तो चाय पिलाता हूँ, दिमाग चाटते हैं तो चटवाता हूँ, कभी-कभी उन्हें रुपये भी उधार देने पड़ते हैं, अपने पास नहीं होते तो अपनी श्रीमतीजी से दिलवा देता हूँ। अक्सर सुना करता था—‘भोली-भाली शक्ल वाले होते हैं जल्लाद भी’ लेकिन एक दिन इन्हीं लपकेन्द्रजी ने इस लोकोक्ति का मुझे प्रत्यक्ष दर्शन करा दिया।

मैं प्रायः कवि-सम्मेलनों में जाता रहता हूँ और जहाँ मौका मिल जाता है उन्हें भी अनुक्रमणिका की तरह साथ लगा लेता हूँ। आज-कल कवयित्रियाँ भी कवि सम्मेलनों को सुशोभित करती हैं। एक कुमारी ‘कबूतरों’ नाम की कवयित्री जी से मेरी घनिष्ठता हो गई

थी। कवि-सम्मेलनों में उनसे भेंट तो हो ही जाती थी, हम साथ बैठकर कभी-कभी चाय भी पीते थे। इसे दुर्भाग्य ही कहूँगा कि जिस कवि-सम्मेलन में मैं लपकेन्द्रजी को ले गया था, उसमें कुमारी 'कबूतरी' भी पधारी थीं। एक तो लपकेन्द्रजी का 'स्कू' कुछ वैसे ही ढीला था, कुमारी कबूतरी को देखकर और भी पेच खुल गए लेकिन कुमारी 'कबूतरी' ने उन्हें कोई प्रोत्साहन नहीं दिया। कवि-सम्मेलन समाप्त करके लौटते तो लपकेन्द्रजी अपने घर चले गए और मैं अपने घर लौट आया।

सुबह नाश्ता करके मैं आफिस चला गया। लपकेन्द्रजी का 'मफलर' मेरी अटैची में रह गया था, मेरे पीछे वह उसे लेने मेरे घर आए। श्रीमती जी से "मफलर" लेकर लपकेन्द्र जी उनसे बोले—
"भाभी जी, आज तो कुछ ऐसा हुआ है कि पूछिए हाँ मत!"

"क्यों क्या बात हो गई लपकेन्द्रजी?"

"कुछ नहीं भाभी, मुझे तो आपके भविष्य पर बड़ा तरस आता है।"

"अरे, कुछ बताओगे भी।"

"अच्छा तुम इतना आग्रह कर रही हो तो बताए ही देता हूँ। तुम्हारे पति अब तुम्हारे नहीं रहे।"

"क्यों ऐसी क्या बात हो गई?"

"भाभी, बात यह है कि कुमारी 'कबूतरी' से इनकी घनिष्टता बहुत बढ़ गई है। अगर मैं कवि-सम्मेलन में न जाता तो पता भी न लग पाता। अभी तो आप चाहें तो मामला रूक सकता है, गाड़ी स्टेशन छोड़ गई तो कुछ नहीं हो सकता।"

लपकेन्द्रजी तो भुस में आग लगाकर चले गए लेकिन जब मैं आफिस से लौटा तब श्रीमतीजी का टेम्परेचर चढ़ा हुआ था। मुझे देखते ही श्रीमतीजी का 'आर्डर' हुआ कि उन्हें पहली गाड़ी से उनके मंके पहुँचा दिया जाए। समझ में नहीं आ रहा था कि आज ही आज मैं ऐसी क्या दुर्घटना हो गई? मैंने उनसे उसी विनय-भाव से उनकी बेरुखी का कारण पूछा जिस प्रकार एक विद्यार्थी अपने प्रिंसिपल से

उनकी नाराजी का कारण पूछता है। बहुत देर बाद उन्होंने अपना मौन-व्रत तोड़ा और वह कहने लगीं—

“हाय राम ! मेरा तो भाग्य ही फूट गया, जब तुम्हीं ने मुझे त्याग दिया तब अब मैं जी कर ही क्या करूँगी ? तुम तो अब उस कुमारी कद्वतरी से प्रेम करने लगे हो, मेरी तुम्हें अब क्या जरूरत है।”

मेरे आश्चर्य की सीमा नहीं थी। मैंने बाबा तुलसीदास जी की ‘धीरज, धर्म, मित्र और नारी’ शीर्षक चौपाई का ध्यान करके दृढ़-प्रतिज्ञ होकर घोषणा की—‘ले आओ दादी जी वाली गंगाजी की बोतल, जो वह पिछली बार कुंभ स्नान के पश्चात् लाई थीं और रख दो मेरे हाथ पर—मैं तो पूरे सौ नए पैसे तुम्हारा ही हूँ। मेरा किसी कुमारी कद्वतरी से प्रेम नहीं है। अब यह तो बताओ कि आखिर यह आग लगाई किसने ?”

ज्यों ही श्रीमती जी ने लपकेन्द्र जी का नाम बताया कि यह पुण्य-कार्य उन्हीं के द्वारा सम्पादित किया गया है तो मैं स्तम्भित रह गया। तीन चार दिन लपकेन्द्रजी से भेंट न हो सकी। एक दिन मिले तो बत्तीसी निकाल कर सफाई देने लगे—“आई एम रीअली सौरी। (सचमुच मुझे बड़ा दुःख है) मैंने तो यूँ ही मजाक में कह दिया था।” मैंने उन्हें उस दिन चाय विदाई-पार्टी के रूप में ही दी और उनसे अपनी जान बचाई। सो जनाव, इस दुनिया के अजायब घर में निःशुल्क रस लेने वालों की कमी नहीं है। सिनेमा देखने जाएँ तो टिकट को पैसे चाहिएँ, किसी क्लब के मेम्बर बनें तो सदस्यता शुल्क एवं मासिक चन्दा देना पड़े। लेकिन जब दूसरों को भिड़ाने में ही आप को लोकोत्तर आनन्द की प्राप्ति होने लगे तब आप मनोरंजन पर पैसा क्यों खर्च करेंगे ?

ऐसी ही एक दूसरी मनोरंजक घटना आद आ गई। दो मित्र थे—अभिन्न, एक प्राण दो शरीर। एक-दूसरे के बिना रह नहीं सकते थे। यार लोगों को भिड़ाने की सूझी। एक दिन वे दोनों मित्र एक होटल में चाय पी रहे थे। ‘भेद-विशारद’ जी वहाँ पहुँचे। उनमें से एक

मित्र को संकेत देकर अलग बुला लिया और उससे बातचीत करने लगे—“नमस्कार ।”

“कहिए ।”

“क्या आप धान और चावल में अन्तर समझते हैं ?”

“यह तो प्रत्येक आदमी जानता है ।”

“देखिए, छिलके सहित धान कहा जाता है, छिलका उतार लिया जाता है तो बचा हुआ चावल कहा जाता है ।”

“आखिर आपका यह सब बतलाने का मतलब क्या है ?”

“कुछ नहीं, अच्छा नमस्कार ।”

वह बेचारा वापिस अपनी जगह पर आया जहाँ उसकी चाय ठंडी हो रही थी और उसका मित्र उसकी प्रतीक्षा कर रहा था । उसने अपने मित्र से आते ही पूछा कि उसको क्यों बुलाया गया था और एकान्त में उससे क्या बात हुई । उसने कहा—“भाई, क्या बताऊँ ? बड़ा ही अजीब आदमी था वह । बुलाकर कहने लगा कि धान और चावल में भेद होता है, चावल छिलका उतारने के बाद कहलाता है, छिलके सहित धान कहा जाता है ।”

उसका मित्र बोला—“भाई तुम तो मुझसे छिपा रहे हो । अगर यही बात बतानी थी तो वह अलग में क्यों बुलाता । जरूर तुमसे मेरी निन्दा की होगी । तुम भी बदल गए । भाई, तुम्हारा क्या दोष ? युग ही ऐसा है । खैर, मत बताओ ।”

परिणाम यह हुआ कि ‘भेद-विशारद’ जी की विजय हुई और उन मित्रों की अभिन्नता उसी क्षण से पूर्णरूपेण भिन्नता में परिवर्तित हो गई ।

मेरेरिया के मच्छरों की तरह ये भेद कराने वाले आप को यत्र, तत्र, सर्वत्र मिलेंगे । मेरे पड़ोस में एक महिला रहती थी । उसके एक ही पुत्र था । उसका विवाह हुआ । पुत्र वधू घर में आई । बहू बड़ी सुशीला थी । घर के काम-काज खूब करती थी । सास को किसी काम में हाथ तक नहीं लगाने देती थी ।

बहू अपने मैके गई हुई थी । पीछे से एक पड़ोसिन आई और लगी

सास से बातचीत करने—“मांजी पाय लागू। सब अच्छी तरह से तो हैं?”

“हाँ बेटी, भगवान की दया है।”

“मांजी, बहू का स्वभाव कैसा है?”

“बेटी, बहू तो गऊ है। मुझे तो घर के काम-काज में हाथ भी नहीं लगाने देती। वह जब से अपने मैके गई है, मेरा तो किसी काम में मन नहीं लगता।”

“मांजी, मैं तो बहुत दिन से सोच रही थी कि आप से एक बात कहूँ, यदि आप आज्ञा दें तो कह दूँ।”

“संकोच की क्या बात है बेटी, अवश्य कह दो।”

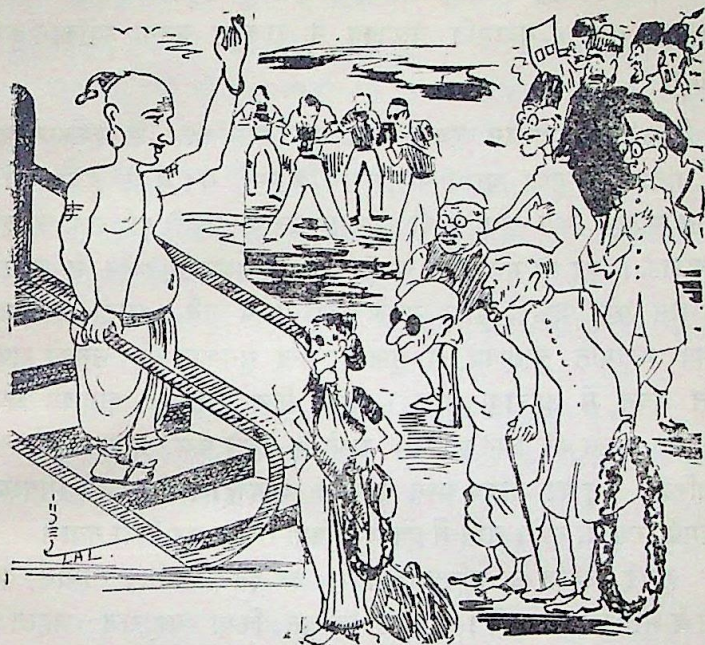
“मांजी, बहू मुझ से कहती थी कि अम्माजी की आंख ऐंछातानी है, जिस दिन मुँह दीख जाता है, दिन भर रोटी भी नसीब नहीं होती।”

“हाय राम, इस सीधी-सी [दीखने वाली के पेट में ऐसी लम्बी दाढ़ी। तूने बड़ा अच्छा किया बेटी जो कह दिया। आने दे लड़के को मैं तो आज ही उससे कह दूँगी कि बेटा इस बहू को लेकर अलग रह, मैं एक मिनट भी इसके साथ नहीं रहूँगी।”

पड़ोसिन तो आग लगा कर चली गई। अब आप कल्पना कर सकते हैं कि उस बेचारी बहू पर क्या बीती होगी।

आपस में भेद करा कर रस लेने वालों की कमी इस संसार में नहीं है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में ये मूर्तियाँ आपको मिलेंगी। गोस्वामी तुलसीदास जी ने तो मानस के प्रारम्भ में ही ऐसे लोगों की व्याज-स्तुति करके अपना पिण्ड छुड़ा लिया है। महादेवी ‘मंथरा’ तो इस विभाग की रानी तथा अध्यक्षा रह चुकी हैं, जिन्होंने मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र जी तक को चौदह वर्षों तक जंगलों में भटकाया।

आज के युग में तो यह कला और भी विकसित हुई है। दफ्तरों में अपने सहयोगी कार्यकर्ताओं को ‘वड़े साहब’ से भिड़ा देने के किस्से कौन नहीं जानता। अन्त में ऐसे सज्जनों को हम इस आशा से अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं कि वे हम पर तथा हमारे मित्रों पर अपनी कृपा करने का कष्ट न करें।



....कुशल राजनीतिज्ञ को साहसी, चालबाज, बदला लेने की तीक्ष्ण भावना का होना चाहिये। शत्रु को न्याय-अन्याय दोनों तरह से तबाह कर डालना न्याय है।

महामति चाणक्य राजदूत बने

सारे देश में इस समाचार से सनसनी फैल गई कि मौर्य साम्राज्य के प्रधानमन्त्री तथा “अर्थशास्त्र” के प्रणेता महामति चाणक्य उपनाम “कौटिल्य” को भारत सरकार ने अमुक देश का राजदूत बनाना तय किया है। देश के विभिन्न भाषाओं के पत्रों ने अपने-अपने तरीके से भारत सरकार के इस निर्णय की मुक्त कंठ से प्रशंसा की। जिस देश में महामति चाणक्य की नियुक्ति की गई थी वहां के पत्रकारों ने भी प्रथम पृष्ठों पर इस समाचार का स्वागत किया।

एक चार्टर्ड प्लेन महामति चाणक्य को लेने स्वर्ग भेजा गया। साथ में नेहरू जी का नियुक्ति-पत्र भी था। नियुक्ति-पत्र जिस भाषा में था, उसे चाणक्य जी ने स्वीकार नहीं किया। ‘चार्टर्ड प्लेन’ पुनः

वापिस आया। यहां से संस्कृत भाषा में उसका अनुवाद कराके वापिस भिजवाया गया। महामति चाणक्य ने राजदूत बनना स्वीकार कर लिया।

निश्चित दिन पालम हवाई अड्डे पर देश-विदेश के पत्रकारों का एक तांता लगा हुआ था। मस्तक पर त्रिपुण्ड्र, सर मुँडा हुआ, यज्ञोपवीत धारण किये हुए, लम्बी शिखा पवन में उड़ती हुई तथा चरणों में खड़ाऊँ। यह था महामति चाणक्य का ठाठवाट। 'प्लेन' से उतरते ही प्रेस फोटोग्राफरों द्वारा उनके फोटो लिये गये। फोटो उतरवाते समय महामति चाणक्य के मुख पर मन्द मुसकान थी। उनको राष्ट्रपति भवन में ठहराया गया। दूसरे दिन महामति चाणक्य अपने गन्तव्य स्थान को जाने को थे। रास्ते के लिये फल, गंगाजल की भरी गगरियां, कूटू का पवित्र अन्न इत्यादि शाकाहारी भोजन की आवश्यक सामग्री रख दी गई। साथ में एक दुभाषिया तैनात कर दिया गया।

हवाई जहाज के अधिकारियों ने जब इतना अधिक सामान देखा तो वे भौंचक्के रह गये। उन्होंने निवेदन किया "महाराज, जहाज की 'केन्टीन' में भोजन का उत्तम प्रबन्ध है, प्रातः चाय और डबलरोटी का जलपान कीजिए तथा दोपहर को मनपसन्द 'मेनू' का 'लंच' आरोगिए। जब दुभाषिये ने महामति चाणक्य को यह समझाया तो वे तुरन्त विगड़ गये और उन्होंने तुरन्त स्वर्ग लौट जाने की धमकी दी। तुरन्त फोन पर विदेश मन्त्रालय के अधिकारियों से सम्पर्क स्थापित किया गया और जहाज वालों से उचित व्यवस्था करा दी गई। जहाज के अन्य यात्रियों के लिये यह सब आश्चर्य की वस्तु बन गये। महामति चाणक्य अपनी सीट पर प्राणायाम करने की मुद्रा में बैठ गए। जैसे-तैसे करके वे अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँच गये। उस दूतावास के कर्मचारियों का एक दल उनका स्वागत करने के लिए पहले से ही वहां उपस्थित था।

दूतावास के कर्मचारियों ने जब से महामति चाणक्य की नियुक्ति के समाचार सुने थे, उन्होंने "कोटिल्य-अर्थशास्त्र" एवं महामति

चाणक्य के जीवन के बारे में जानकारी प्रारम्भ कर दी थी। उन्हें जब यह मालूम हुआ कि महामति चाणक्य ने एक दिन प्रातःकाल वन की कांटेदार झाड़ियों को काट डाला था तथा उनकी जड़ों में खट्टा दही डाल दिया था क्योंकि उन झाड़ियों के कांटों से महामति चाणक्य के पिता की मृत्यु हो गई थी, वे लोग बड़े भयभीत हो गये थे।

उस कृष्णकाय ब्राह्मण ने आते ही दूतावास में निम्नलिखित आदेश जारी कर दिये :—

१. प्रत्येक कर्मचारी अपना सर चौबीस घण्टे के अन्दर मुंडा डालेगा।
२. मस्तक पर चन्दन लगाना प्रत्येक के लिये आवश्यक है।
३. संस्कृत का व्यावहारिक ज्ञान दो महीने के अन्दर जो कर्मचारी न कर सकेंगे, उन्हें नौकरी से पृथक् कर दिया जायेगा।
४. चाय, मदिरा तथा धूम्रपान आदि उत्तेजक वस्तुओं का उपयोग कर्मचारियों के लिये पूर्णरूपेण वर्जित रहेगा।
५. चमड़े के जूते के स्थान पर कर्मचारी काठ की खड़ाऊँ का इस्तेमाल करेंगे।
६. स्त्री कर्मचारियों पर आदेश नं० १ लागू नहीं होगा किन्तु केवल ब्रह्मचारिणी नारियाँ ही दूतावास में रह सकेंगी। सारे दूतावास का भोजन इनको ही बनाना पड़ेगा।

इन आदेशों से कर्मचारियों में एक प्रकार की खलबल मच गई। सब कर्मचारियों को दिन में तारे नजर आने लगे। इस बेकारी के युग में किसी की हिम्मत कुछ भी विरोध करने की न हुई। जीविका का प्रश्न था। आज्ञा की अवहेलना करने का तो कोई प्रश्न ही नहीं था। कर्मचारी इस 'सकुलर' के 'शाक' से उठ भी न पाये थे कि महामति चाणक्य का दूतावास को पुनर्गठन करने सम्बन्धी दूसरा 'सकुलर' और आ गया। वह इस प्रकार था :—

१. सारा कीमती फर्नीचर तुरन्त क्रय कर दिया जाय। इसके स्थान पर चटाइयों को बिछा दिया जाय।

२. काँच के बर्तनों का इस्तेमाल न किया जाय। केवल ताँबे के बर्तनों का प्रयोग किया जाय। अशुद्ध हो जाने पर उन्हें अग्नि द्वारा शुद्ध किया जाय।

३. दिन में सामूहिक रूप से त्रिकाल संध्या हो। संध्या में भाग लेने के लिये स्नान करके आना आवश्यक है।

४. एकादशी को निराहार रहना सबके लिये आवश्यक है, इस-लिये उस दिन दूतावास के भोजनालय बिल्कुल बन्द रहेंगे।

५. प्रातःकाल वेदपाठ एवं प्रति रविवार को यज्ञ हो जिसमें प्रत्येक कमचारी का सम्मिलित होना आवश्यक है।

दूतावास का पुनर्गठन करने के उपरान्त उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं का अध्ययन प्रारम्भ किया। विश्व के राजनीतिज्ञों में उनसे मिलने की उत्कण्ठा जाग्रत होने लगी। महामति चाणक्य की कूटनीति पर अनुसंधान कार्य होने लगा। बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ अपनी-अपनी समस्याओं पर उनसे परामर्श लेने के लिए संस्कृत पढ़ने लगे। भारत से संस्कृत के पंडितों का निर्यात होने लगा तथा वे उच्च वेतनों पर विभिन्न देशों में नियुक्त कर दिये गये।

भारत विरोधी देशों में एक प्रकार की पराजय की भावना व्याप्त हो गई। इनमें से कुछों का तो 'नरवस ब्रेकडाउन' हो गया और वे समझौते के प्रस्ताव अपने दूतों द्वारा भिजवाने लगे।

महामति चाणक्य ने एक प्रेस वक्तव्य देते हुए कहा कि विश्व की शान्ति के लिये उदजन एवं हाइड्रोजन बमों का परीक्षण वांछनीय नहीं है। इन देशों को यह स्मरण रखना चाहिए कि भारतवर्ष पर भी सुदर्शन-चक्र है जिससे परीक्षण करने से संसार नष्ट-भ्रष्ट हो सकता है किन्तु भारत शान्ति चाहता है। साथ ही उन्होंने अन्य राष्ट्रों को चेतावनी दी कि समय आने पर 'सुदर्शन-चक्र' का प्रयोग करने में वे न चूकेंगे। 'सुदर्शन-चक्र' को स्वर्ग से मँगाने के लिये वे भगवान कृष्ण से आवश्यक लिखा-पढ़ी कर रहे हैं।

इस वक्तव्य के प्रकाशित होते ही विश्व के सारे राष्ट्रों में

खलबली मच गई। संयुक्त-राष्ट्र-परिषद की एक विशेष बैठक की आयोजना की गई और उसमें महामति चाणक्य को भाषण देने के लिए निमन्त्रित किया गया।

महामति चाणक्य ने अपने भाषण में पहले 'राजनीतिज्ञ' शब्द की व्याख्या करते हुए कहा "एक कुशल राजनीतिज्ञ को साहसी, चालबाज, बदला लेने की तीक्ष्ण भावना रखने वाला होना चाहिए। शत्रु को न्याय, अन्याय दोनों ही तरह से तबाह कर डालना न्याय है।" इसका उपस्थित जनता पर मिला-जुला प्रभाव पड़ा। कुछ लोगों ने तालियाँ बजाईं और कुछ 'रीएक्शनरी' 'रीएक्शनरी' के नारे लगाने लगे।

अपना भाषण जारी करते हुए उन्होंने 'कूटनीति' की भी व्याख्या की। उन्होंने कहा—“नाशन दोस्त से दाना दुश्मन अच्छा होता है और ऐसे शत्रु को मार सकने का षड्यन्त्र रचने के बजाय उससे मेल करने में ही समाज का हित है। समाज का हित सबसे बड़ा है। समाज का हित और स्वार्थ की रक्षा का प्रश्न जहाँ आ जाय, वहाँ कूटनीति को छोड़कर ईमानदारी बरतनी चाहिए।”

'ईमानदारी' शब्द पर सभा में हल्ला मच गया। जिन लोगों के स्वार्थ पर धक्का लगता था वे महामति चाणक्य की बुराई करने लगे और बाद में 'हूटिंग' करने लगे। सभापति ने कई बार मेज पर हाथ पटक-पटक कर सभा में शान्ति स्थापित की।

'हूटिंग' के कारण महामति चाणक्य को भी क्रोध आ गया किन्तु वे शान्त कर दिये गये। दूतावास में लौटकर उन्होंने ११ दिन का उपवास किया। उन्होंने नेहरूजी को यह सन्नाचार भिजवाया कि वे शीघ्र ही स्वर्ग चले जायेंगे। बहुत कुछ कहने-सुनने पर भी उन्होंने अपना त्यागपत्र वापिस नहीं लिया और आखिर वे किसी से बिना कुछ कहे-सुने स्वर्ग सिधार गये।



“लल्ला, मेरा सर फटा जा रहा है, इसमें दवा लगा दो—

‘फ्लू’ की पावन स्मृति में

जब किसी के वरे ग्रह आते हैं तब किसी से पूछकर नहीं आते। छुट्टी का दिन था। अच्छा भला बाजार को निकला था कि श्रीमतीजी ने टोका “आज तो छुट्टी का दिन है कहां की तैयारी हो गई। मौसी जी इतने दिनों से बीमार हैं आज तो उन्हें देख आओ, तुम्हें तो कभी फुरसत भी नहीं मिलती।” मुझे ऐसा अनुभव हुआ मानो चलती हुई साइकल में ‘वर्स्ट’ हो गया।

बड़े-बड़े आदमियों को मैंने देखा है, आप विश्वास कीजिए जिनका उनके दफ्तरों में बड़ा रोबदौब होता है, बड़े स्तबे होते हैं किन्तु वे भी होम गवर्नमेंट के सामने ‘सरेन्डर’ कर देते हैं। मेरा सौभाग्य है कि मैं भी ‘पत्नी दासाचार्य समुदाय’ का एक तुच्छ सेवक हूँ। मैंने सादर उनकी आज्ञा पालन करने का संकल्प कर लिया।

मैं स्वभाव से ही बड़ा शंकाशील हूँ। उन दिनों ‘फ्लू’ की बहार आ रही थी। समाचार पत्रों में भी ‘फ्लू साहित्य’ का प्राधान्य था यद्यपि उस समय तक मुझ पर ‘फ्लू देव’ ने कृपा नहीं की थी परन्तु

उस दिन श्रीमतीजी की कृपा से मुझे ‘पलू देव’ के दर्शन करने जाना ही था। ‘बस’ में जिसे देखो वही मुँह मोड़े हुए बैठा हुआ था। मैं भी एक सीट पर बैठ गया। एक सज्जन और बैठे थे उन्होंने मेरी ओर से इसलिए पीठ फेर ली मानों मुझे ‘पलू’ हो गया था। मैं स्वयं उनसे इसलिये बच रहा था कि कहीं वे ‘पलू’ से पीड़ित न हों। एक अजीब वातावरण था। किसी प्रकार मौसी जी के मकान पर पहुँचा। वे ‘पलू-रामायण’ का उत्तरकांड समाप्त करने पर थीं। देखने में प्रतीत होता था कि उन्हें ‘पलू’ कम था किन्तु आराम करने की इच्छा अधिक प्रबल थी। मुझे देखते ही उन्होंने स्त्री सुलभ नाट्य का प्रदर्शन प्रारम्भ कर दिया। कहने लगीं ‘अरे लल्ला, तुम्हें आज फुरसत मिल गई क्या? मैंने तो यह सोच लिया था कि शायद अन्त समय पर ही आओगे। अरे ये तो हमारा ही मन है जो नहीं मानता। अभी तुम्हारे बच्चा हुआ उन दिनों चालीस दिन घर रहकर आई हूँ अपने बाल-बच्चों की तनिक भी चिन्ता न की।’ उधर वे लेक्चर दे रही थीं। इधर मुझे डर लग रहा था कि ‘पलू’ के ‘जर्म्स’ मुझे न लग जायँ। इसलिये मैंने मुँह को रुमाल से ढंक रखा था। मौसी जी इस पर आग-बबूला हो गईं और विल्लाने लगीं—‘हाय राम, क्या मेरे मुँह से बास आ रही है जो लल्ला तुमने मुँह ढक रखा है।’ मैंने संकोचवश रुमाल हटाकर उत्तर दिया ‘नहीं मौसी जी, मुझे तो कुछ जुकाम-सा हो रहा था आप नाराज होती हैं तो रुमाल हटाये लेता हूँ।’ उन्होंने डाक्टर ले आने का आदेश दिया। वह तो ईश्वर की कृपा थी कि मेरी जेब में दस रुपये का एक नोट पड़ा हुआ था। वर्ना बड़ी परेशानियाँ उठानी पड़तीं। एक रिक्शेवाला मिला। उसमें एक सवारी बैठी थी। मैं भी उसमें बैठ गया। थोड़ी ही दूर जाने पर साथ वाली सवारी ने ‘फ्रन्टियरमेल’ की ‘स्पीड’ से छींकें लेना प्रारम्भ कर दिया। मैं बीच में ही रिक्शेवाले को पूरे पैसे देकर उतर गया। रास्ते में कड़ी धूप का आनन्द लेता हुआ डाक्टर साहब के यहाँ पहुँचा। डाक्टर साहब के दवाखाने में नौकरी दिलाने वाले दपतर की सी भीड़ लगी

हुई थी। डाक्टर साहब से बात करना उतना ही कठिन हो रहा था जैसे किसी मिनिस्टर से इन्टरव्यू लेना। उस समय संसार से विरक्ति के भाव मन में उभर रहे थे। सोच रहा था कि यदि शादी न करता तो श्रीमतीजी की मौसी को देखने के लिये यह 'द्राविड़प्राणायाम' क्यों करना पड़ता और आज छुट्टी के दिन का सदुपयोग किसी रेस्तरां या सिनेमा हाल में बैठकर होता। खैर ये बातें तो बेकार थीं। सत्य तो यह था कि दोपहर के १२ बज रहे थे और मैं निराहार दवाखाने में बैठा था।

डाक्टर साहब ऐसे खुश नजर आ रहे थे मानो उनका लड़का किसी 'डेलीगेशन' में जा रहा हो। काफी प्रतीक्षा के बाद मेरा नम्बर आया और एक टैक्सी में उन्हें बैठाकर घर पहुँचा। डाक्टर साहब को देखकर वे बीमारी का प्रदर्शन करने लगीं। डाक्टर साहब ने उनमें ताकत का एक 'इंजेक्शन' लगाया और एक पर्चे पर दवा लिख दी। मैंने प्रेमपूर्वक उन्हें भेंट की जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया। 'इंजेक्शन' के लगते ही मौसी जी ने भैरवी का अलाप लगाना प्रारम्भ कर दिया। सम्भवतः जीवन में पहली ही बार उनके इंजेक्शन लगा था। डाक्टर साहब तो चले गये किन्तु मैं उनके मधुर संगीत को सुनता रहा। पुनः उनका आदेश हुआ "लल्ला मेरा सर फटा जा रहा है जरा इसमें दवा लगा दो।" मैं जब दवा मल रहा था तो उसके मुख से ताजे समोसे खाने की सुगन्ध आ रही थी। सम्भवतः वे अपना जलपान उस समय कर चुकी थीं जिस समय मैं दवा लेने गया था वे फिर मधुरता से बोलीं "लल्ला, घर में आटा नहीं है, उसे ही पिसा लाओ, बच्चों ने सुबह से कुछ नहीं खाया। तुम्हें तकलीफ तो होगी इस स्टोव को जलाकर पहले चाय ही बना लो। क्या करूँ, तुमसे यह सब काम कराते मुझे तो बड़ी शर्म आ रही है पर करूँ भी क्या? सच लल्ला, तुम क्या आ गये, मेरे तो साक्षात् भगवान पधारे हैं।"

उनकी यह प्रशंसा मेरे कटे पर नमक छिड़क रही थी। मैं बार-बार यही याद कर रहा था कि उस दिन प्रातः मैंने किसका मुँह देखा

था। एक काम समाप्त नहीं होता था कि दूसरा काम बता देती थीं। समझ में नहीं आ रहा था कि किस मुसीबत में पड़ गया।

दिन ढलने पर आ गया था। मौसीजी कभी वेदान्त बघारतीं कभी रुदन करतीं और कभी तुरन्त ही अट्टहास करने लगतीं। मैं यह ‘निःशुल्क’ तमाशा देख रहा था। अन्त में मुझे छट्टी मिली। रास्ते में ही मौसाजी के सत्संग का प्रभाव स्पष्ट दीखने लगा। मुझे छींकें आना शुरू हो गया तथा साथ में गले में मीठी-मीठी खराश।

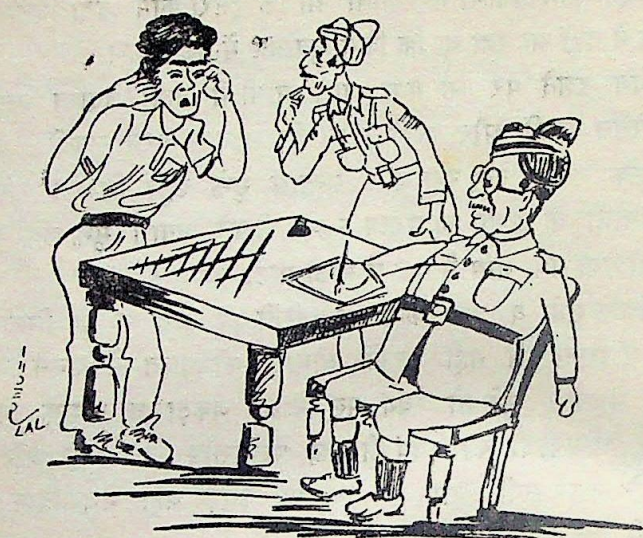
यद्यपि मुझे यह सब कष्ट श्रीमतीजी की कृपा से ही मिला था किन्तु मैं इतना मूर्ख नहीं था कि बीमारी की हालत में उनसे ‘महा-भारत’ छेड़ता। मुझे तो स्वयं ‘पलू’ ने आ जकड़ा था। मुझे बीमार देखकर ‘श्रीमतीजी’ को स्वयं ही कुछ पश्चात्ताप होने लगा और बड़े प्यार से कहने लगीं, “हाय, मैंने तुम्हें क्यों उनके यहां भेज दिया था, तुम्हें भी ‘पलू’ हो गया।”

दूसरे दिन प्रातः मेरा बुखार उतर गया किन्तु श्रीमतीजी मय बच्चों के पलू देव की आराधना करने लगीं।

मैंने उनसे कहा, “घबड़ाओ मत, आओ हम सब मिल कर मौसी-जी के नाम का कीर्तन करें जिनकी कृपा से पलू देव ने अपना घर पवित्र किया।”

और मैं सपरिवार कीर्तन करने लगा।





....आपको अपनी साइकिल का न तां नम्बर ही याद है, न उसकी तानों की संख्या ही याद है, न उसकी रसीद ही आपके पास है—क्यों न आपको हवालात में बन्द कर दिया जाये ?

साइकिल की चोरी

किसी के बुरे ग्रह आते हैं तब किसी के यहां चोरी होती है। शायरों की दुनिया में 'दिल की चोरी' भी होती है जिसके आनन्द का वर्णन करने में वे कोई कसर नहीं छोड़ते। शायरी की सृष्टि में जिसके अच्छे ग्रह होते हैं उसी के दिल को चुपके-चुपके कोई चुरा लेता है। जो कुछ भी हो, अपने राम को तो 'दिल की चोरी' का अनुभव नहीं है। इसे छोड़िए, अब अन्य वस्तुओं की चोरी को भी बुरा नहीं समझा जाता। सिनेमाओं में जेबकतरों तथा चोरों के जीवन को ही आदर्श-जीवन दिखाया जाने लगा है। उन्हें समाज ऐसा करने को विवश करता है। समाज को दोषी ठहराया जाता है। समाज में धन के वितरण की जो असमानता है, वह चोरों तथा जेबकतरों द्वारा ही समान होगी। विचार उच्च है। यदि ऐसे उच्च-भाव और जोर पकड़ते गए तो चोरी तथा जेबकतरापन को भी अन्य

उद्योग-धन्धों की भांति मान्यता प्राप्त हो जायगी। चोरों तथा जेब-कतरों को कृष्णमन्दिर के स्थान पर समाज में ही उच्च पद प्राप्त होंगे, ऐसा भविष्य दिखाई दे रहा है।

हाँ, तो एक दिन यह हुआ कि प्रभात की स्वर्णिम बेला में मुझे वह प्रत्यक्ष अनुभूति हुई कि मेरी प्रिय साइकिल देवी जी अन्तर्ध्यान हो गई। हमने अपने दिमाग को बहुत कष्ट इस बात के स्मरण दिलाने के लिए दिया कि कहीं अज्ञातवश मुझसे कोई ऐसा अपराध तो नहीं हो गया जिससे प्रिय साइकिल देवीजी रुठ गई हों। मुझे जहाँ तक स्मरण है मैं उन्हें अपनी पत्नी की भांति ही प्यार करता था। कभी-कभी तो पत्नी भी इस बात पर रुष्ट हो जाती कि मैं पत्नी की अपेक्षाकृत साइकिल के साथ अपना अधिक समय बिताता हूँ। मैं वास्तव में दोनों को एक ही आँख से देखता था। इस मामले में मैं पूरा अद्वैतवादी था। मैं नारी स्वातंत्र्य का मानने वाला हूँ। मैं उसमें कोई ताला नहीं लगाता था। मैंने उसे बन्धन-मुक्त कर रक्खा था। मैं तुलसीदासजी का “जिमि स्वतंत्र हों बिगिरहि नारी” वाली चौपाई का घोर विरोधी था। किन्तु गोस्वामी जी की बात ठीक निकली। थोड़े ही दिन से उसे बन्धन-मुक्त किया था कि वे रफूचककर हो गईं।

मैंने अपने परिचित एवं मित्रों से पूछा। सबने असमर्थता प्रकट की। कोई कहता “भाई हम तो कहकर ले जाते थे,” दूसरे बोले “तुम हम पर शक करते हो।” जब कहीं से कुछ पता न लगा तो मैं हताश हो गया। मेरे एक शुभचिन्तक जी ने यह सत्परामर्श दिया कि मैं पुलिस में रिपोर्ट कर दूँ तुरन्त साइकिल मिल जायगी। मेरा विरह मिलन में परिणत हो जायगा। मैं तत्पर हो गया। मैं सीधा कोत-वाली पहुँचा। मुंशी जी कुछ लिख रहे थे। अक्षरों के देखने से मालूम हुआ कि मानो कुछ रहस्यवादी कविता लिख रहे हों। लगभग आध घण्टे पश्चात् मुंशीजी ने मेरी ओर अपने झुके हुए चश्मे को और नीचे झुकाकर इस प्रकार देखा मानो बिल्ली चूहे को देखती है।

वे फिर अपने काम में लग गए। आधा घण्टा फिर बीत गया। मेरा धैर्य साथ छोड़ चुका था। ज्योंही दूसरी बार उनका मुख-कमल ऊपर उठा मैंने दस्तबस्ता अर्ज किया कि हुजूर मेरी साइकिल चोरी चली गई है, रिपोर्ट लिखाने आया हूँ। मुंशी जी का 'टेम्परेचर' चढ़ गया। बोले, "देखते नहीं हो, क्या मैं खाली बैठा हूँ। निहायत जरूरी काम कर रहा हूँ।" और वे पुनः अपने जरूरी काम में लग गए। लगभग दो घण्टे की प्रतीक्षा के बाद मुंशी जी ने मेरी रिपोर्ट लिखी। मैं वहाँ से अपने दो घण्टे का बलिदान करके लौटा आया। लौटकर अपने काम पर चला गया। दफ्तर से लौट कर आया तो पता चला कि दो पड़ोसियों को पुलिस वाले पकड़ कर ले गए हैं। बाजार घूमने जाने की तैयारी ही कर रहा था कि वे दोनों पड़ोसी घर लौटते मिले उनके मखमंडल पर ज्येष्ठ की दोपहरी के सूर्यनारायण का सा तेज था। वे आते ही मुझ पर बरसे। जितनी उनकी मिट्टी कोतवाली में किरकरी हुई थी उससे दुगुनी उन्होंने मेरी की। मुझे अपने देवता याद आ रहे थे। मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि मेरा दोष इसमें कहाँ तक था? मैंने उन पड़ोसियों पर कोई शक पुलिस के आगे जाहिर नहीं किया था। वे पड़ोसी मेरे जानी दुश्मन हो गए। घर में एक विषाक्त वातावरण हो गया।

इधर सहानुभूति-प्रदर्शन करने वाले रिश्तेदारों तथा मित्रों का ताँता लगा हुआ था। जो आता उसे साइकिल खोने की प्रारम्भ से अन्त तक कहानी सुनानी पड़ती। कोई मुझे लापरवाह बताता, कोई ज्योतिषी के यहाँ जाने की सलाह देता, कोई कहता कि चोर घर देख गये हैं, आगे और भी चोरी हो सकती है इसलिए इस घर से निकलना चाहिए। मेरी नाक में दम आ गया।

दिवस का अवसान समीप था कि एक दीवान जी तथा एक सिपाही पधारे। मैंने उनका अभिनन्दन किया। उन्होंने मेरे घर का नक्शा बनाना प्रारम्भ किया। मेरे मित्रों के नाम पूछे। मेरी कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करूँ। इसके बाद साइकिल के

खारे में उन्होंने जो प्रश्न किये वे इस प्रकार थे:—

“आपने साइकिल कब खरीदी ?”

“लगभग तीन साल हुए।”

“ठीक तारीख और सन् बताइए ?”

“याद नहीं है।”

“किस फर्म से खरीदी ?”

“साइकिल मार्ट, आगरा से।”

“उसकी रसीद कहाँ है ?”

“मैंने उसे संभाल के नहीं रक्खा, ढूँढ़ूँगा।”

“उसका नम्बर क्या था ?”

“याद नहीं।”

“कोई विशेष पहचान है !”

“उसके आगे के पहिए की दो तानें टूटी हुई थीं।”

“ठीक तानें कितनी थीं।”

“याद नहीं।”

वे यह सब अभिनय करके, मुझे प्रातः कोतवाली आने का निमन्त्रण देकर चले गये। मुझे रात भर नींद नहीं आई। मैं बराबर सोचता था कि किस शुभ घड़ी में मैंने रिपोर्ट लिखाई। दूसरे दिन प्रातः कोतवाली पहुँचा। पता लगा जिन इन्स्पेक्टर साहब से मुझे मिलना है वह बाहर चले गये हैं। मैं दोपहर को दो बजे आऊँ। दफ्तर से एक दिन की छुट्टी ली। पुनः दो बजे गया। काफी देर कोशिश करने के बाद पता लगा कि मैं अमुक चौकी पर जाऊँ। मेरा मामला वहाँ भेज दिया गया है।

वह चौकी लगभग चार मील पर थी। पानी बरसने लगा था। एक रिक्शा लिया। परमात्मा की अनुकम्पा से बीच में ही उसमें पंचर हो गया। वर्षाऋतु का आनन्द सड़क पर खड़ा होकर लेने लगा। मैं कवि-हृदय हूँ। अपना ‘सूड’ कविता करने की ओर करने लगा। लाख प्रयत्न करने पर भी ‘सूड’ नहीं आ रहा था। पूर्ण-रूपेण स्नान कर चुका

था। किसी प्रकार चौकी पर पहुँचा वहाँ एक कानस्टेबल साहब खाट पर पड़े खराटे भर रहे थे। सोचा जगाऊं। लेकिन सोते सिंह का जगाना और सोते सिपाही को जगाना एक बात समझकर वहीं चुपचाप बैठ गया।

लगभग एक घंटे बाद भगवान ने सुनी। टेलीफोन की घंटी आई। टेलीफोन को घंटी सरकार की खाट के पास ही बजी। सरकार उठे और लेटे ही लेटे बात करने लगे। 'साइकिल' शब्द उनके मुँह से जैसे ही सुना। मैंने समझा मेरा ही मामला होगा। ज्योंही उन्होंने यह कहा "यहाँ कोई नहीं आया" तुरन्त ही मैंने रोका "हज़ूर, यह खिदमतगार तो एक घंटे से बैठा है"। उन्होंने कहा "अच्छा, थोड़ी देर और बैठ" कहकर वे पुनः लम्बायमान हो गये।

मैंने सोचा सम्भवतः अब ये कहना इसलिए नहीं चाहते कि इन पर उलटी जिम्मेदारी आती है। आध घंटे बाद वे उठे और उन्होंने स्वयं टेलीफोन किया। बातचीत करने के बाद मुझसे बोले कि इन्स्पेक्टर साहब कोतवाली में ही मुझे बुला रहे हैं।

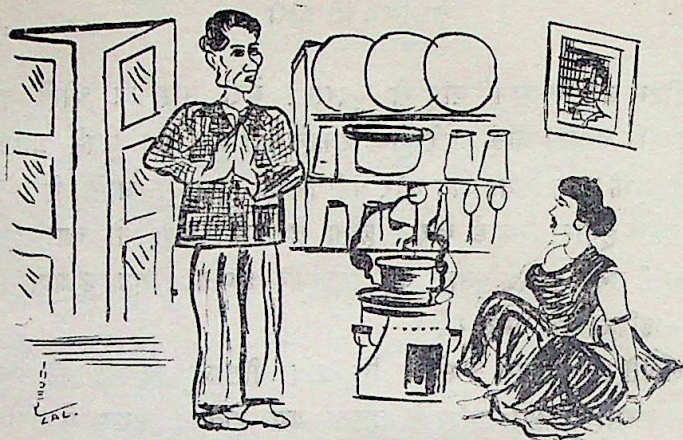
सुनकर मुझे रोमांच हो आया। स्वह से एकादशी व्रत हो रहा था। कपड़े एक बार भीगकर सूख भी गये थे। पुनः लौटकर कोतवाली आया। मैं मन में सोच रहा था साधना निष्फल नहीं जाती। साइकिल तो मिल ही जायगी। कल से परेशानी दूर हो जायगी। वहाँ जाकर पता लगा अभी-अभी इन्स्पेक्टर साहब कहीं जांच करने गये हैं। मैं वहाँ बैठकर इन्तजार करने लगा। दिये जल चुके थे जब इन्स्पेक्टर साहब तशरीफ लाये। उनके दफ़्तर में ले जाकर मुझे पेश किया गया था। उन्होंने मुझे सर से पाँव तक गौर से देखा फिर बोले "आपने साइकिल के बारे में जो उत्तर दिये हैं उनसे ऐसा प्रतीत होता है कि साइकिल आपकी नहीं है। आपको अपनी साइकिल का न तो नम्बर मालूम है, न उसकी तानों की संख्या ही याद है, न उसकी रसीद आप पर है। क्यों न आपको हवालात में बन्द कर दिया जाय?"

मेरे पैरों के नीचे से जमीन खिसक गई। "आये थे हरिभजन

को ओटन लगे कपास ।” बाह री कुदरत ! मेरी साइकिल चोरी गई, मैं ही चोर बनाया जाऊँ । मेरे होश ठिकाने नहीं थे । मैंने उनसे प्रार्थना की कि मुझे माफ किया जाय और मेरी रिपोर्ट काट दी जाय । वे बोले नहीं इससे हमारा रिकार्ड खराब होता है । मैंने कहा तो क्या होना चाहिए ? उनके आदेशानुसार यह लिखकर अपना पिराड छुड़ाया कि मेरी साइकिल मुझे मिल गई ।

लौटते समय रास्ते में सोचा कि यदि सीताजी लक्ष्मण की रेखा पार न करतीं तो क्यों रावण से इतना युद्ध होता ? अगर मैं रिपोर्ट न लिखाता तो मेरी ऐसी दुर्दशा क्यों होती ?

“रंग लाती है हिना, पत्थर पर घिस जाने के बाद” ।



...जी, आज तो सच तुम्हें बड़ा इन्तजार करना पड़ा होगा।
बस रहने दीजिये। मेरे जन्म में तो चूल्हा फूँकना ही लिखा है...

दफ्तर में देर हो गई

मैंने कहा "अजी सुन रहे हो आज शाम को सिनेमा चलेंगे।" मैंने स्नी अनस्नी कर दी मानो मैं दफ्तर की फाइल में योगी के समान लीन हूँ। दूसरी बार जरा तीव्र स्वर में श्रीमती जी ने कहा, मैंने कहा ऊँचा सुनने लग गये हो क्या? "जी, मैंने सुना नहीं", कहते हुए अपनी बत्तीस दांतों की मधुर पंक्ति उनके सम्मुख निकाली। मैं कह रही थी कि आज शाम को सिनेमा चलना है। मैं बहुत शान्त स्वर में बोला, भई, "आजकल सिनेमाओं में बड़ी भीड़ रहती है, ठंड का मौसम है, कालिंज के लड़के अलग आवाजें कसते हैं, बीड़ी पीने वालों का धुवां अलग परेशान करता है, सच पूछो तो मुझे सिनेमा से नफरत हो गई है।"

श्रीमती जी अति गंभीर मुद्रा में व्यंग मिश्रित स्वर में बोलीं, "श्रीमान् जी आपके विचार बड़े पवित्र हैं, दूरदर्शिता भलक रही है परन्तु ये सारे सिनेमा जाने वाले कौशिक नहीं हैं, इसमें बड़े-बड़े सभ्य नर नारी भी हैं। डाक्टर हैं, वकील हैं, पत्रों के सम्पादक हैं, मैं तो सर्वोदय समाज का सबसे प्रमुख अंग सिनेमा को ही मानती हूँ। और

परेशानी कहाँ नहीं होती क्या आप सिनेमा में सुना हुआ उस दिन का अमर गीत भूल गये।

मन साफ़ तेरा है कि नहीं पूछ ले जी से,
फिर जो कुछ करना हा कर ले खुशी से।

वह इंसान क्या जो मुसीबतों की ठोकरें न सह सके।

“मैं जब सिनेमा चलने के लिए कहती हूँ तब कुछ न कुछ बहाना लगा देते हो, आज सिनेमा को बुराइयों पर ही व्याख्यान भाड़ने लगे हो, इस खेल का आज आखिरी दिन है, यह देखो अखबार में भी आ गया है।” मैंने दिल में सोचा इन अखबार वालों की बुद्धि का दिवाला निकल गया है, जो पैसा देता है उसी का विज्ञापन छाप देते हैं यह नहीं सोचते कि इसका किस स्थान पर क्या प्रभाव पड़ेगा। तलाक बिल का ध्यान आते ही मैंने श्रीमती जी के सम्मुख आत्मसमर्पण कर दिया और कहा, “आपको आज्ञा शिरोधार्य है, मैं दफ़्तर से शीघ्र आ जाऊँगा आप बिलकुल तैयार रहियेगा।” श्रीमती जी का मुख कमल विजय घोष से आल्हादित होकर खिल उठा और वे अपनी बालकों की फोज के सहित वापिस चली गयीं। मैं बाजार से तरकारी लेने जाने लगा। घर के दरवाजे पर ही था कि रामलाल जी आ गये। रामलाल जी मेरे बचपन के मित्र थे। बाहर के बरामदे में ही उन्हें बैठाया और उनसे आने का कारण पूछा। वे बोले, “भैया तुम्हारे बच्चे का मुँडन है, शाम को छः बजे सब मित्रों को पार्टी दी है, ऐसा न हो कि तुम न आओ।”

मैंने विनम्र स्वर से उत्तर दिया, “वाह रामलाल जी आप तो मेरे प्राण हैं, मैं अवश्य आता लेकिन आज पहले शो में ही श्रीमती जी के साथ…………।” मैं वाक्य पूरा भी न कर पाया था कि रामलाल जी बरस पड़े, “लेकिन-वेकिन कुछ नहीं, आज तो तुम्हें आना ही है। यह दिन बड़ी कठिनाता से आया है, सिनेमा तो रोज होता है, आज यदि तुम न आये तो मैं आजन्म तुमसे कोई सम्बन्ध न रखूँगा।” मैं जान गया था कि रामलाल जी पर श्रीमती जी से हुए सिनेमा कांड की

चरचा करना व्यर्थ है मैंने उनसे कह दिया, “अच्छा भाई अवश्य आने की कोशिश करूंगा।” उनको विदा करके सोचने लगा कि एक विपत्ति समाप्त न हुई कि दूसरी आ टपकी। साढ़े आठ बज चुके थे। तेजी से बाजार की ओर लपका कि रास्ते में कृष्णप्रसाद जी मिल गये। ये स्थानीय स्कूल के अध्यापक थे। उनको देखते ही याद आ गई कि उस दिन के कवि सम्मेलन के लिये वे कई दिन पहले कह गये थे। उनको देखकर मैं नमस्कार कर ऐसी जल्दी भागा मानो बीमा एजेन्ट को आते देख उसका ग्राहक भागता है। पर वे मुझे कहाँ छोड़ने वाले थे, रोक कर बोले, “अरे भाई मैं तो तुम्हारे ही यहां जा रहा था, वैसे तो तुमसे कई दिन पहले ही कह दिया था लेकिन तब भी याद दिला देना [आवश्यक था, देखो बड़े-बड़े कवि आ रहे हैं, कवि सम्राट पूंछेन्द्र जी सभापति का आसन सुशोभित करेंगे।” मैंने कहा, “भाई मेरी ही ऐसी क्या जरूरत है।” उन्होंने उत्तर दिया, “भाई वाह तुम्हारे बिना तो सब फीका रहेगा, मैंने तो तुम्हारा नाम भी सब अखबारों में छपवा दिया है और यह देखो निमंत्रण पत्र में और कवियों के साथ तुम्हारा नाम भी दे दिया है। लेकिन भाई अब तुम बड़े कवि हो गए हो इसलिए छोटे कवि सम्मेलनों में जाना नापसन्द करते हो, यह कहो न।”

मैंने अति विनम्रता से कहा, “कृष्णप्रसाद जी यह आप कैसी बातें करने लगे, भाई पहले शो में श्रीमती जी के साथ सिनेमा जाना है इसलिए शायद।”

“शायद-वायद नहीं, तुम्हें तो ठीक समय पर आना ही पड़ेगा, ऐसी भी पत्ति-भक्ति क्या, मुझे भी अन्य स्थानों पर जाना है, देखो तुम अवश्य आ जाना, नमस्ते।” और वे चले गए।

मेरे विचारों का वेग फ्रंटियर मेल से कम रफ्तार पर न था। सोच रहा था, ‘भगवान आज कहां-कहां जाऊं, श्रीमती जी से बात करते समय कवि सम्मेलन की बात क्यों याद नहीं आई, खैर राम-लाल जी के एकमात्र बच्चे के मुंडन में भी जाना जरूरी ही है नहीं तो

वे बुरा मानेंगे। विचारों के आवेश में अपने को भूल चुका था और ध्यान मग्न संन्यासी की तरह सड़क पर चला जा रहा था कि एक श्रीमती जी से टक्कर हो गई। 'माफ कीजिए मेरा ध्यान कहीं और था', मैंने भेंपते हुए कहा। "आपके तो दो की जगह चार आंखें हैं और जनाव यह सड़क है जरा होश से चला करिये। रही माफी की बात सो इस पर तो अभी तक कंट्रोल नहीं हुआ है जितनी माँगें मिल सकती है।"

मैं भेंप मिटा कर चल दिया। घर पहुँच कर भोजनोपरान्त दफ्तर चल दिया। साइकिल देवी अस्वस्थ थीं इसलिए बस स्टेण्ड पर पहुँचा। बस प्रेमियों की पंक्ति में जाकर मैं भी खड़ा हो गया तथा बस दर्शन की आस में मैंने नेत्र लगा दिए। चिर प्रतीक्षा के बाद बस मिलने के मधुर क्षण आये। मैं बस में बैठ गया। बस में बैठे यात्री चर्चा कर रहे थे। एक कहता था, भाई समय ही नहीं मिलता, स्वास्थ्य कैसे सुधरे आज राशन लेने जाना है, कल चीनी का परमिट बनवाना है, परसों मिट्टी का तेल लाना है। दूसरा बोला, मित्र तुम दूध कहां से लाते हो मुझे तो एक घंटा दूध लाने में ही लग जाता है, उधर शदियों के मारे नाक में दम है। जिसके न जाओ उसी का टेम्परेचर चढ़ जाता है। क्या कहें कुछ समझ में ही नहीं आता। तीसरा बोला, भैया समय की तो कुछ पूछो ही मत, मेरी श्रीमती जी तो मुझसे सख्त नाराज हैं, दफ्तर से लौटने में इतनी देर हो जाती है कि कई दिन से वे सिनेमा चलने को कह रही हैं परन्तु जा ही नहीं पाता। एक दुःखी को जब अपना-सा दूसरा दुःखी मिल जाता है तो उसके हृदय को शान्ति होती है मैं उनकी बातें एकाग्रता से सुन रहा था जैसे परीक्षा के समय विद्यार्थी अपने अध्यापक की बातों को सुनता है। उनमें से पहले वाले ने फिर कहा, यार कभी तो स्थिति बड़ी नाजुक हो जाती है, बेकार का झूठ बोलना पड़ता है। दूसरा बोला भाई किया क्या जाय, किसी प्रकार जान तो बचानी ही पड़ती है। श्रीमती जी का यह हाल है कि जरा देर हुई और उन्हें शक हुआ। कई बार कह चुके कि हम अब बाल-बच्चेदार आदमी हैं तुम तो व्यर्थ में शंका किया करती हो। मेरी

भी इच्छा थी कि उस वार्तालाप में भाग लूं, परन्तु रहीम जी का यह पद याद करके कि—

रहिमन निज मन की व्यथा मन ही राखो गोय

चुप रहा, अपने दफ्तर के पास उतर गया।

दफ्तर में मिस प्रमिला स्टेनोग्राफर थीं। मेरे ही सेक्शन में काम करती थीं, सुन्दर कम थीं, परन्तु उनमें हीरे की सी चमक और गुलाब की सी महक थी। मैं आधुनिक युग का नवयुवक, उनसे खुलकर मिलता था। परन्तु वे कुछ अपने ही तक सीमित थीं। मैं अपनी ही चिन्ताओं में लगा हुआ था। आफिस में पहुँचते ही फाइलों का बंडल गुलदस्ते के अनेकों पुष्पों के समान मेरे सम्मुख आ गया, मैं भी उनमें रम गया।

प्रमिला भी हमारे सेक्शन रूपी रेगिस्तान की एकमात्र हरियाली थी। कुछ दिनों से मेरा उनसे थोड़ा सम्पर्क बढ़ गया था परन्तु वह इतने तक ही सीमित था कि दोपहर के अवकाश में वे मेरे साथ रेस्टरां में चाय पिया करती थी। मेरी कमजोरी समझिये परन्तु न मालूम क्यों उनके साथ चाय पीने में मेरे हृदय को रस मिलता था। नित्य की भाँति हम लोग चाय पी रहे थे कि वह बोली, “रमेश बाबू आज तो आप बड़े उदास मालूम पड़ते हैं।” “जी नहीं”, कहकर मैंने कृत्रिम हँसी लाने की चेष्टा की। “नहीं कुछ बात तो है, वे पुनः मुस्कराती हुई बोलीं।”

मैं नहीं चाहता था कि घर के भगड़े उनको बताऊँ। मैंने ऐसे ही कह दिया, “अजी कुछ तबियत ही आज काम में नहीं लग रही है।” वे बोलीं, “ऐसी भी क्या बात है आज यहां से सीधे क्लब चलिए, मेरी बहिन भी शिमला से आई हैं वहां साथ खाना खावेंगे, फिर साथ बाजार घूमने चलेंगे, वहां से आप अपने घर चले जाना।”

बड़ा धर्म संकट सामने आ गया। भावुक हृदय कवि को एक सुन्दर नारी के मुख से निमंत्रण पत्र मिलना मंगलाप्रसाद परितोषिक मिलने से कम नहीं होता। मुझे संध्या के तीनों वायदे याद थे परन्तु उनके सम्मुख केवल मौन रहकर अपनी सम्मति दे दी। संध्या के साढ़े पाँच

बजे आफिस से चला, बस पकड़ी और संडे क्लब जा पहुँचे। रेस्तराँ में भोजन करते समय जब शाम के कार्यक्रम की याद आती थी तो ऐसा ही व्यवधान आता था कि जैसे व्यूक कार में जाते समय किसी गड्ढे से कार का गुजरना और शरीर में एक धक्के का लगना। पर सच कहता हूँ कि भावना के आवेश में मैं कहां-कहां जा रहा था। साढ़े सात तो क्लब में ही बज गये थे। बाज़ार घूम फिर कर रात को नौ बजे उनसे घर जाने के लिए जब विदा होने लगा तो प्रमिला देवी बोलीं, “वैल रमेश बाबू वी हैड ए प्लेजेन्ट इर्विनिंग टु डे।” मैंने उनसे नमस्कार करके विदा ली, घर का ख्याल आते ही विचारधारा हां तीव्र नहीं हुई किन्तु हृदय की गति भी तीव्र हो गई। आज श्रीमती जी से क्या कहकर जान बचाई जायगी। कोई निकट के रिश्तेदार की तबियत भी खराब नहीं थी जिससे यह कह दिया जाता कि उनको देखने चला गया था। काश उस दिन मुझे ही तीव्र ज्वर आ गया होता जिससे कि मैं श्रीमती जी की सहानुभूति का पात्र बन गया होता। सत्य कहता हूँ बचपन की रह-रहकर याद आ रही थी, जब स्कूल के अध्यापकों से बहाने बनाकर उनकी मार से बचा करता था। बचपन के बहाने जवानी में कब काम आ सकते थे। सोच रहा था कि कवि-सम्मेलन वाले महाशय मेरी अनुपस्थिति का न जाने क्या-क्या अर्थ लगाते होंगे कि मैं बहुत घमण्डी हो गया हूँ। बाबा तुलसीदास जी की यह चौपाई स्मरण करके कि—

धीरज धर्म मित्र औ नारी, अपार्पित काल परलिये चारी।

अपना धीरज बाँधा। झूठ बोलने की कसम नहीं खा रखी थी परन्तु सख्त जरूरत के वक्त ही बोला करता था। मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि उस दिन भगवान भी मेरे सत्य की परीक्षा लेने का हठ निश्चय किये बैठे थे।

घर पहुँचते ही सांकल बजाई परन्तु कोई उत्तर नहीं। अन्दर से कुछ आवाज आ रही थी, शायद श्रीमती जी नौकर को डांट रही थीं। पुनः मैंने अपने छोटे बच्चे को आवाज दी। वह अन्दर से बोल

तो रहा था परन्तु दरवाजा खोलने में असमर्थता प्रकट कर रहा था। मैं शंकित था कि क्या आज की रात बाहर ही काटनी पड़ेगी। लगभग तीन मिनट बाद नौकर ने आकर दरवाजा खोला। उसके चेहरे से ऐसा प्रतीत होता था मानो घर में किसी की मृत्यु हो गई है। मैंने उससे पूछा, “क्या है रे क्यूँ मुँह लटकाये हुए है”। वह अत्यन्त करुण भाव से बोला, “बाबूजी आप अन्दर तो चलिये बहूजी बहुत नाराज हो रही हैं। सिनेमा जाने को संध्या से ही तैयार बैठी थीं, आपकी राह देखते-देखते यह वक्त हो गया, अभी-अभी कपड़े बदले हैं, और बाबूजी उसी समय वे आपके दोस्त रामलालजी आपको बुलाने आये थे तो उन पर ही बरस पड़ीं।” उन्होंने पूछा था, कब तक वापिस आयेंगे तो गरज कर कहने लगीं, परमात्मा जाने कोई वक्त हो तो बताऊँ रोज का यही रोग है। मैंने उसको विदा ही किया था कि थोड़ी देर में एक साहब आपको कवि सम्मेलन के लिए बुलाने आये, सच कहता हूँ बाबूजी अगर मैं न होता तो उन पर तो वे आक्रमण ही कर देतीं। खैर बाबूजी अन्दर चलिए। खाना कब का ठंडा हो रहा है और बात पीछे बताऊंगा।

मैं असमंजस में था, सोच रहा था कि क्या ऐसी विषम परिस्थिति में घर के अन्दर जाना खतरे से खाली है, परन्तु जन्म से अर्जित सारे साहस को बटोर कर श्रीमती जी के सम्मुख एक अपराधी की भांति खड़ा होकर उनसे विनम्र स्वर में कहा, “जी, आज तो सच तुम्हें बड़ा इन्तजार करना पड़ा होगा” मैं वाक्य पूरा भी न कर पाया था कि वे उबल पड़ीं, “बस रहने दीजिये। मैं तो वैसे ही आपके साथ जाने का कभी प्रोग्राम नहीं बनाती, मेरे जन्म में तो चूल्हा फूंकना ही लिखा है इस घर की चाहारदिवारी में ही किसी दिन जिन्दगी की डोरी कटेगी। हाय भगवान मुझे उठा क्यों नहीं लेते” और यह कहते-कहते उनके कमल नयनों में अश्रु छलकने लगे।

मैंने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा, “तुम तो सदैव गलत समझती रहिं, क्या बताऊँ आज दफ़्तर में ही इतनी देर हो गई, बड़े साहब का मुआयना था पिछले पच्चीस साल की फाइलें निकलवा कर उन्होंने

देखी थीं, अब छुट्टी मिली सीधा दफ्तर से ही चला आ रहा हूँ, यह गुलामी भी बड़ी बुरी चीज है, पर क्या करूँ इस पापी पेट के लिए सब कुछ करना पड़ता है, आज यह गृहस्थी न होती तो अकेला मैं अपना पेट कहीं भी भर लेता।” तीर निशाने पर लगा। श्रीमती जी दया-मिश्रित स्वर में बोलीं, “अच्छा चलकर खाना तो खा लीजिये।” फिर क्या था ठाठ से भोजन करके निद्रा में निमग्न हो गए।



“कृपया अपनी शिक्षा पर प्रकाश डालने का कष्ट करें ?”

“दर्जा दो में लगातार तीन साल फेल हुआ ।”

“अब तो कवि-सम्मेलन फिर से होने लगे हैं ?”

“गुरुजी को स्वर्ग पधारे दा वर्ष हो गये । अब, कौन कविता बनाकर दे ।”

कविवर ‘पूछेन्द्र’ जी

लाला छदम्मीलाल जी हमारे नगर के अच्छे व्यापारी हैं। ईश्वर की दया से धन के साथ-साथ शरीर भी अच्छा पाया है। उनके पुत्र रत्न हुआ। उसका मुँडन ‘वसन्तपंचमी’ को होना निश्चित हुआ। मित्रों के आग्रह से उन्होंने उस दिन अपने घर कवि-सम्मेलन करने का निश्चय किया। लाला बोले कि यदि कवि-सम्मेलन कर रहे हो तो आखिल भारतीय कवि-सम्मेलन ही करो। रुपये की चिन्ता मत करो, बड़े-बड़े सभी कवियों को बुलाओ। चाहे कितना ही रुपया खर्च हो जाय। पैसा बात को या स्वाद को, फिर क्या था सब जगह के कवियों को पत्र लिखे गये किसी ने सैकंड क्लास का किराया मांगा। किसी ने लिखा कि किराये के अतिरिक्त अमुक रकम और लूंगा, किसी ने लिखा मैं अपनी मय पत्नी ‘डबल सैकंड क्लास’ किराये से

कम पर नहीं आ सकता। बहर हाल सब की शर्तें मंजूर की गईं कवि सम्मेलन प्रारम्भ हुआ, अच्छा समा बैठा।

मैं भी लाला जी के मित्र हाने के नाते काव्य रस-पान करके अपने को अहोभाग्य समझता था।

कवि-सम्मेलन में मैं पूछेन्द्र जी की कविता से बहुत प्रभावित हुआ यद्यपि स्वास्थ्य गिरा हुआ था, तब भी आप कवि सम्मेलन में पधारें थे। मुख आम की चुसी हुई गुठली जैसा, आंखें धँसी हुई, बड़े अस्त-व्यस्त, कुरते के बटन खुले हुए, चूड़ीदार कसा हुआ पाजामा जो पसीने के कारण गन्दा हो रहा था। मैं आपको पहले भी कई कवि-सम्मेलनों में देख चुका था। कविता पढ़ते समय आपकी वोटी-वोटी फड़कती थी। मद्रा कुछ बक्र हो जाती थी, हाथ पैर फँकने लगते थे। तालियां बजते ही अपनी ध्वनि तनिक उच्च कर देते थे। मेरे एक साहित्यिक मित्र हाल ही में बड़े लोगों से इंटरव्यू करके ही बड़ी जल्दी प्रकाश में आ चुके थे। मुझे भी यह चाव बढ़ा। सोचा निबन्ध लिखने को किताबें पढ़ो, कहानी, कविता की वैसे ही वाढ़ आई हुई है, 'इंटरव्यू' करना सबसे आसान है। महान् आत्माओं से बातचीत कर उसे शब्दबद्ध कर देना ही पर्याप्त है। मैंने श्री 'पूछेन्द्र' जी से कर-बद्ध प्रार्थना की कि मैं उनका 'इंटरव्यू' लेना चाहता हूँ। पहले तो इंटरव्यू शब्द ही वे न समझे पर मैंने जब उन्हें समझाया तो राजी हो गये ! मेरे उनके बीच जो प्रश्नोत्तर हुए वे इस प्रकार हैं :—

“आपका बाल्यकाल किस प्रकार व्यतीत हुआ ?”

“बिल्कुल प्रारम्भिक जीवन की तो अधिक स्मृति नहीं पर जब से होश सभाला है तब की बता रहा हूँ। मुझे बचपन में 'गिल्लोडंडा' खेलने का शौक बहुत था। पिताजी की पान की दुकान थी। कभी-कभी दुकान पर भी बैठता था।”

“माफ़ कीजिये, आपकी इस बाईं आंख में जो फूजी है क्या वह जन्म से ही है या बाद में हुई ?”

“जी मैं यह कहना भूल गया था, एक दिन 'गिल्ली' मेरी आंख

में लगी जिससे मेरा एक नेत्र खंडित हो गया ।”

“कृपया अपनी शिक्षा पर प्रकाश डालने का कष्ट करें ।”

“मुझे पिताजी ने स्कूल में दाखिल कराया । मुझ से सवाल नहीं निकाले जाते थे । वैसे तो और विषयों में भी कमजोर था । दर्जा दो में तीन साल लगातार फेल हुआ । दर्जा तीन में किसी प्रकार चढ़ा, दर्जा तीन में कई साल फेल होते हो गये तब पिताजी ने स्कूल से उठा लिया ।”

“उसके बाद आप के अध्ययन का क्या हाल रहा ?”

“जी, फिर तो मैंने घर पर ही अध्ययन किया, उसमें मुझे सन्तोष लाभ हुआ । लगभग सभी भाषाओं का ज्ञान घर पर ही कर लिया ।”

“आप को कविता करने का शौक कब पैदा हुआ ?”

“पिताजी की मृत्यु के बाद मैं अपनी दुकान पर बैठने लगा । पान की दुकान थी, आप जानते हैं तमोत्रियों की दुकान पर सब तरह के पंछी आते हैं । एक कवि जी शाम को मेरी दुकान पर आकर बैठते थे । थोड़े दिनों में मेरा उनसे स्नेह बढ़ा । जब आते तो किसी न किसी कवि सम्मेलन का निमन्त्रण-पत्र दिखाते और कहते सैकेण्ड क्लास का किराया मिलता है, थर्ड क्लास में जाता हूँ, कुछ रुपये तो ऐसे बच जाते हैं यदि बिना टिकिट का हिसाब बैठ गया तो किराये के सारे रुपये बच जाते हैं और वहाँ जाकर नाना प्रकार के भोजन मिलते हैं । रुपया पैसा और भी जो किस्मत में लिखा है वह अलग से मिल जाता है । मैंने उनसे पूछा आप के पास निमन्त्रण कैसे आते हैं तो उन्होंने बताया कि आसपास के दस-बीस कवियों ने गुट बना रखा है । संयोजक जी जिसके परिचित होते हैं वही सब के नाम और पते उन्हें बता देते हैं । मुझसे बोले कि दिन भर ‘दस तम्बर’ की बीड़ियां बेचते हो कवि क्यों नहीं बन जाते ? फिर क्या था बन गया उनका शागिर्द और जाने लगा कवि-सम्मेलनों में ।

“आप की सर्वप्रथम कविता कौन सी है ?”

“देखिये, मुझे बनने से बड़ी घृणा है केवल कुछ इने गिने अवसरों को छोड़ कर झूठ बहुत कम बोलता हूँ। आप से यथार्थ कहने में कोई संकोच नहीं है। वास्तव में मैंने अभी तक कोई कविता नहीं लिखी। मेरे ‘गुरुजी’ ने गुरुआत में मुझे दो कवितायें दीं एक पाकिस्तान के खिलाफ और एक अंग्रेजों के हिन्दुस्तान से निकल जाने के बारे में। उन्हीं को मैंने अपने गले में बैठा लिया था, फिर क्या था चल निकला।

“इन दो कविताओं को आपने कितने काव्य-सम्मेलनों में पढ़ा ?”

“पिछले दस वर्षों में दर्जनों कवि-सम्मेलनों में गया हूँगा। इन्हीं दो कविताओं से हजारों नर-नारियों द्वारा तालियाँ बजवाईं।”

“क्या कभी ऐसा नहीं हुआ जहाँ जनता ने आप से नई कविता पढ़ने का आग्रह किया हो ?”

“हाँ भाई यह कठिनाई कई बार आई। पोल खुलने से बाल-बाल बची। बात यह है कि हर कवि-सम्मेलन में पन्डाल पर दो एक मित्रों को अपने साथ रखता हूँ। जब मेरा नाम पुकारा जाता है त्यों ही मेरे ये मित्र चिल्लाने लगते हैं पूँछेन्द्रजी, ‘पाकिस्तान वाली या अंग्रेजों वाली।’ कभी-कभी ऐसा अवसर आ गया है जब पन्डाल में कोई परिचित मित्र नहीं होता। जनता चिल्लाती है पुरानो कविता नहीं होगी। मैं फौरन महात्मा तुलसीदास जी की ‘धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपति काल परखिये चारी॥’ वाली चौपाई का स्मरण कर डट जाता हूँ और अत्यन्त गम्भीर मुद्रा बना कर कविता पढ़ने से पहले यह कह कर कि मित्रों का आग्रह है कि अमुक कविता सुनाऊँ, प्रारम्भ कर देता हूँ।”

“क्या आजकल भी वे ही कवितायें काम दे रही हैं ?”

“भाई, आजकल की हालत न पूछो। दोनों कवितायें बेकार हो

गई। 'पाकिस्तान' बन जाने से पाकिस्तान वाली कविता तथा स्वतन्त्रता मिल जाने से अंग्रेजों वाली कविता कोई सुनता ही नहीं है। केवल सन्तोष इस बात का है कि मेरी तो दो ही कवितायें बेकार हुईं परन्तु बहुत से कवियों के संकलन ही बेकार हो गये। और साहब दूसरे के दुःख को देखकर आदमी अपना दुःख भी भूल जाता है।"

"कवि-सम्मेलनों में आपकी क्या मासिक आय हो जाती है?"

"ईश्वर की दया से अच्छा खर्च चल जाता था, इसी से मैंने अपनी दूकान उठा दी, पिछले सालों से बड़ी मंदी आ गई है। मंदी क्या साहब कवि-सम्मेलनों का तो व्यापार ही समाप्त हो गया। कुछ दिन तो हिन्दू-मुस्लिम दंगों के कारण कवि-सम्मेलन बन्द रहे फिर इन शरणाथियों ने नाक में दम कर दिया। अब महंगाई के मारे लोग कवि-सम्मेलनों का नाम नहीं लेते। कुछ दिनों तो पुरानी पूँजी में काम चलाया। अब तो मैं एक प्रेस में कम्पोजीटरी करता हूँ।"

"अब तो कवि-सम्मेलन फिर से होने लगे हैं?"

"हाँ, भाई मेरे पास भी एक निमन्त्रण आया था गुरुजी को स्वर्ग पधारे दो वर्ष हो गये। कौन कविता बना कर दे। पुरानी कवितायें बेकार हो गईं? काश्मीर पर एक तुकबन्दी लिखी भी है पर उसे पढ़ने की हिम्मत नहीं होती। कहीं न जमा तो जमा जमाया रंग भी फीका पड़ जावेगा। इसी उधेड़-बुन में स्वास्थ्य भी गिरा चला जा रहा है। गुरुजी की रह-रह कर याद आती है। हाय भूभ्रम मङ्गधार में छोड़ गये।"

"आपने अपना उपनाम कब रक्खा?"

"देखिये, बिना उपनाम के किसी भी कवि के नाम में सुन्दरता नहीं आती। बात ये थी कि मैं 'गुरुजी' की पूँछ बन कर ही इतना बड़ा कवि बन गया। इस कारण 'पूँछ' शब्द से मेरा अनुराग हो गया। न मालूम लोग 'पूँछ' शब्द का क्यों मजाक उड़ाते हैं। इस शब्द को लोकप्रिय बनाने के लिये ही मैंने अपना नाम 'पूँछेन्द्र' रख छोड़ा है।"

समय काफी हो चुका था मैंने उनसे विदा ली, चलते-चलते एक दुर्घटना हो गई। 'पूँछेन्द्र' जी की चप्पलें कोई सज्जन ले गये। दोष स्पष्ट मेरा था कि वे मुझे 'इंटरव्यू' देने में तल्लीन रहे। मैं स्वयं उन्हें 'बाटा घर' दुकान पर ले गया और उनकी पसन्द की चप्पल उन्हें पहना कर विदा कर दिया।



“जस दूल्हा तस बनी बाराता ।

कौतुक विविध होंहि मग जाता ।”

बारात की बात

मनुष्य के दैनिक जीवन में कभी-कभी ऐसे क्षण आते हैं कि वह मस्तो में भूम जाता है। विद्यार्थी जीवन में परीक्षा-फल का आना एक ऐसा ही क्षण होता है कि विद्यार्थी (बशर्ते वह पास हो गया हो) खुशी में विभोर हो जाता है, व्यापारी के लिये नफे की खबर उसके जीवन में हास्य ला देती है, कवियों के लिये कवि सम्मेलन का निमन्त्रण आनन्द की एक वस्तु है, नौकरी पेशे वाले को तरक्की की खबर गुदगुदाने वाली होती है। “क्रासवर्ड” भरने वालों को सही इनाम का तार उनके जीवन में एक हलचल मचा देने वाला होता है।

इसी प्रकार बारात का न्यूता आना भी मनुष्य के दैनिक जीवन में एक प्रकार का विशेष भाव उत्पन्न कर देता है। बारात में शामिल होने वाला मनुष्य साधारण मनुष्य नहीं रहता वरन् उसमें एक असाधारणता आ जाती है। यह नई बात नहीं है। बारातें प्राचीन काल में होती रही हैं और मनुष्य उनमें सम्मिलित होते रहे हैं। एक प्राचीन संस्कृत का श्लोक है :—

पणार्धं क्रीतताम्बूल चर्वणाद् गर्विताननाः

अनभ्यासाद् गल्लालः यान्त्यैते वर यात्रिण ।

अर्थात् आधे पैसे का (आजकल तो दो पैसे का) पान खाकर जिनके चेहरों पर घमण्ड आ गया परन्तु अनभ्यास के कारण तमाम पान की पीक अपने कुरते कमीजों पर बहाते हुए बाराती जा रहे हैं।

तुलसीकृत रामायण में शिवजी की बारात का प्रकरण किसने न पढ़ा होगा। शिवजी की बारात का कितना सुन्दर चित्रण है :—

नाना बाहन नाना भेखा,
विहसे शिव समाज जिन देखा।
काउ मुख हीन विपुल मुख काऊ,
बिनु पद कर नोई बहु पद बाहू।
विपुल नयन कोउ नयन विहीना,
हृष्ट पुष्ट कोउ अति तनु छीना।
जस दूल्ह तस बनी बराता,
कौतुक विविध होंहि मग जाता।

यद्यपि आजकल की बारातों में भी आप ध्यानपूर्वक देखियेगा तो आपको दृष्टिगोचर होगा कि इतनी प्राचीन बारात में और आज की बारात में बहुत कम अन्तर है।

बारात दुधारी तलवार होती है। लड़की वाले और लड़के वाले दोनों को परेशान करती है। परीक्षा में बैठने वाले विद्यार्थी जिस प्रकार परीक्षा-फल की चिंता में लग जाते हैं उसी प्रकार लड़की वाला आने वाली बारात के इन्तजाम में लग जाता है। मान लीजिए बारात के आने में अभी एक महीने की देर है, लेकिन तैयारियां अभी से हो रही हैं। लोग कह रहे हैं कि बारातियों का ऐसा सत्कार किया जाय कि किसी को जबान हिलाने का मौका न मिले। वे लोग भी याद करें कि किसी के यहां बारात में गये थे। एक पूरा मकान बर्तनों से घिरा हुआ है, चाय के सैंट हैं, नाश्ते की तश्तरियां, थाल, लोटे, गिलास। लड़की वाले के रिश्तेदार काम में

चुटे हुए हैं। उन लोगों को अपनी उपयोगिता सिद्ध करने का ऐसा अच्छा अवसर फिर बहुत दिनों बाद मिलेगा। जहां एक आदमी को जाना होता है पांच दौड़ते हैं। काम कम होता है हुल्लड़ अधिक, जरा-जरा सी बात पर घण्टों तक तर्क वितर्क होता है। एक कहता है यह घी खराब है, दूसरा कहता है इससे अच्छा बाजार में मिल जाये तो मैं तेरी टांग की राह निकल जाऊं। तीसरा कहता है कि इसमें तो हीक आती है। चौथा कहता है कि तुम्हारी नाक सड़ गई है तुम क्या जानो कि घी किसे कहते हैं। कोई कहता है कि बारातियों को यहां ठहराया जाय, कोई कहता है वहां ठहराया जाये। बड़ी-बड़ी कांफ्रेंसों का आयोजन होना सरल है अपेक्षाकृत इन बारातों के।

अब बारात ले जाने वाले की ओर ध्यान दीजिये। दूल्हा के चाचा, मौसा, मामा, फूफा सब इकट्ठे हो रहे हैं, बारात में कौन-कौन जायेंगे, किस गाड़ी से चलना होगा, मामा जी की राय है मोटर से चला जाय, चाचा जी कहते हैं ट्रेन में, मामा जी सैकिंड क्लास पर जमे हुए हैं, चाचा जी जरा लोभी हैं उनकी राय में बारातियों को थर्ड क्लास में ले जाना चाहिये। दूल्हा का बाप बेचारा चुपचाप तमाशा देख रहा है। उसका दखल देना शील के विपरीत है। पुराने रूठे हुए को मनाने का काम किसी एक को सौंपा जा रहा है। कुछ लोग कहते हैं कि हाथी आना चाहिये। दूसरे कहते हैं कि वक्त नाजुक है ज्यादा तड़क-भड़क की जरूरत नहीं है, तो तीसरे कहते हैं खानदान देखो, बाप हाथी पर निकला, बाबा हाथी पर निकला। यह कैसे हो सकता है अब हाथी न आये।

बारात में जाना और अजायबघर में जाना एक बराबर है। जिसे देखिये, वह एक अजब शवल बनाये आता है। बारात में शामिल होने वाला बिरला ही बराती ऐसा होगा जो अकड़कर न चले। जिसे देखो वही ६० डिग्री का कोण बनाए हुए है। कोई चमकती टोपी पहने हुए है तो कोई सूट-बूट धारी हैट लगाए चला जा रहा है, तो कोई बुड्ढा लखनवी टोपी पहन कर बांका नौजवान बन-

कर आया हुआ है। माले मुफ्त दिले बेरहम—भटके को माला धारण किये हुए, मुफ्त का चन्दन लगाकर जब बाराती चलता है तो क्या वह दुनिया में अपने बराबर किसी को समझता है।

समय की पाबन्दी यदि देखनी हो तो बारात में। कोई भी काम यदि दिये हुए समय पर हो जाय तो वह बारात नहीं कही जा सकती। निमन्त्रण पत्र पर वक्त लिखा रहता है शाम को सात बजे। पर क्या मजाल कि सात बजे बारात निकल जाय। कुछ बाराती जो समय के पाबंद होते हैं वे पहुँच जाते हैं समय पर, लेकिन होता क्या है कि अभी बाजे वाले नहीं आये तो बल्लम वाले दूसरी शादी में गये हैं, तो दूल्हा वाली मोटर सजने गई है और इस प्रकार रात के नौ बज जाते हैं। शहरों में बारात चलने में ओ० टी० आर० रेलवे मालूम पड़ती है जो थोड़ी दूर जाने के बाद रुक जाती है। और इस प्रकार मंजिल तक पहुँचने में पर्याप्त समय ले लेती है।

बाराती जब घर से चलते हैं तो एक-एक छटांक के होते हैं परन्तु लड़की वाले के मकान पर पहुँचते-पहुँचते उनमें मनो वजन बढ़ जाता है जो उठाये नहीं उठता है। साहब आपको क्या बताऊँ यदि आपको कभी लड़की वाले की ओर से बारातियों का सत्कार करने का मौका मिला हो तो आपको अनुभव हुआ होगा कि बारातियों का पैर जमीन पर होता है और दिमाग आसमान पर। बाराती का छोटा नाबालिग बच्चा भी लड़की वाले के बड़े से बड़े आदमी पर रौब जमाने का लाइसेंस प्राप्त करके आता है।

परमात्मा ने जब से यह दुनिया बनाई है तब से बारातियों को पूर्ण रूप से सन्तुष्ट करने वाला आज तक नहीं हुआ। आप चाहे अपनी जान दे दीजिये। आप अपनी सारी शक्ति लगा कर ऐसा आदर्श प्रबन्ध कीजिए कि कोई कसर न रह जाय परन्तु ये माई के लाल कोई न कोई मीन-मेज निकाले बगैर नहीं रुक सकते और यदि रुक जाते हैं तो वे सच्चे बाराती नहीं। देर में खाना भेजिये तो भूखों मर जाने का बात कहेंगे, यदि जल्दी भेज दीजिये तो क्या हम घर

से भूखे आये हैं, कहा जायगा।

उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द जी ने एक जगह बारातियों का चित्रण कितना सुन्दर किया है—“जब से ब्रह्मा ने सृष्टि रची, तब से आज तक कभी बारातियों को कोई प्रसन्न नहीं कर सका। उन्हें दोष निकालने और निंदा करने का कोई न कोई अवसर मिल ही जाता है। जिसे अपने घर सूखी रोटियाँ भी मयस्सर नहीं, वह भी बारात में जाकर तानाशाह बन बैठता है। तेल खुशबूदार नहीं, साबुन टके सेर का जाने कहाँ से बटोर लाये, कहार बात नहीं सुनते, लालटेन धुआँ देती हैं, कुर्सियों में खटमल हैं, चारपाइयाँ ढोली हैं। जनवासे की जगह हवादार नहीं। ऐसी-ऐसी हजारों शिकायतें रहती हैं। उन्हें आप कहां तक रोकियेगा? अगर यह मौका न मिला तो और कोई ऐव निकाल लिये जायेंगे। भाई यह तेल तो वेश्याओं के लगाने लायक है, हमें तो सादा तेल चाहिये, जनाव यह साबुन नहीं भेजा है, अपनी अमीरी की गान दिखाई है, मानो हमने साबुन देखा ही नहीं। ये कहार नहीं यमदूत हैं, जब देखिये सर पर सवार, लालटेन ऐसी भेजी है कि आंखें चमकने लगती हैं अगर दस पांच दिन इस रोशनी में बैठना पड़ा तो आंखें फूट जायें। जनवासा क्या है, अभागे का भाग्य है, जिस पर चारों तरफ से भोंके आते रहते हैं।” मैं तो फिर भी यही कहूँगा कि बारातियों के नखरों का विचार ही छोड़ दो।

परन्तु यह सब होते हुए भी बारातियों का महत्त्व है। सिविल-मैरिज ऐक्ट के विवाह तो अब चले हैं परन्तु वैदिक रीति से हुए विवाहों में यदि बाद में तलाक का प्रश्न सम्मुख आये तो वाराती ही गवाही में लिये जाते हैं कि विवाह उनके सामने हुआ है।

सरकार ने जो पचास महमानों की सीमा निर्धारित करदी है, इससे बारातियों में असन्तोष है और “अखिल भारतवर्षीय बाराती एसोसियेशन” बहुत जल्दी बनने वाली है जो कि अपना एक डेपूटेशन सरकार के पास ले जायगी।

वास्तव में किसी ने सच कहा है कि—

“जम की बहिन बारात”

भू सोवे भूखा मरे,

अर्थात् बारात यमराज की बहिन है जो पृथ्वी पर सुलाती है
और भूखों मारती है ।





...वह दिन भर में करोड़ों का हिसाब करता है लेकिन उसकी जेब में एक फूटी कौड़ी नहीं।

एक कामर्स का विद्यार्थी

एक दुबला-पतला, चश्मा लगाये हुए, भुकी कमर वाला विद्यार्थी डेस्क पर हाथ टेके हुए क्लास रूम में बैठा है। हाँ, वह कर रहा है अपनी बुककीपिंग—अपनी प्यारी बुककीपिंग। उसकी कलम में ताकत है, बड़े से बड़े आदमी को कर्जदार बनाने की। वह दिन-भर में करोड़ों रुपये का हिसाब करता है, किन्तु अफसोस! जब वह क्लास से अपने घर लौटता है, तो उसकी जेब में एक फूटी कौड़ी भी नहीं मिलती। वाह, यह कोई हँसने की बात थोड़े ही है। देखिये, यह कवियों की तरह गिनती के अक्षरों को सुन्दर तारों की भाँति आकाश रूपी रजिस्टर में जड़ देता है और फिर स्वप्नवत वह तारे छिप जाते हैं और वह घर चला जाता है।

इस कविता का भी बाकायदे पिंगल-शास्त्र मौजूद है। इस कविता कामिनी के आचार्य श्री वाटली बाई द्विवेदी द्वारा लिखे हुए

करीब पांच-पांच सौ सफ़ों के—पांच ग्रन्थ इस समय मौजूद हैं—इसके अतिरिक्त अन्य आचार्यों में श्रीयुत काणे महोदय तथा श्री केशकर जी अग्रगण्य हैं—

कहीं आप ऐसा न समझें कि ये वर्तमान समय से पीछे हों । ये छायावाद में भी रस लेते हैं । जिस प्रकार आजकल का छायावादी कवि अपनी कविता को स्वयं ही समझ सकता है, ठीक उसी भाँति आप भी अपनी सुलेखनी से Frontier Mail की स्पीड से लिखी गई शार्टहैण्ड को स्वयं ही समझ सकते हैं; और तो बेचारा कोई क्या लेकिन सृष्टि के रचने वाले श्री ब्रह्माजी भी स्वयं पधारें तो वे भी हार मान जायेंगे । इस विषय के आचार्य हैं श्री ईसाक पिटमेन महोदय—आजकल आप लन्दन में निवास करते हैं; आपकी ही कृपा का फल है कि यह सुभधुर-विद्या निखर रही है तथा इसके प्रेमी दिन प्रतिदिन रबड़ की भाँति बढ़ते चले जा रहे हैं ।

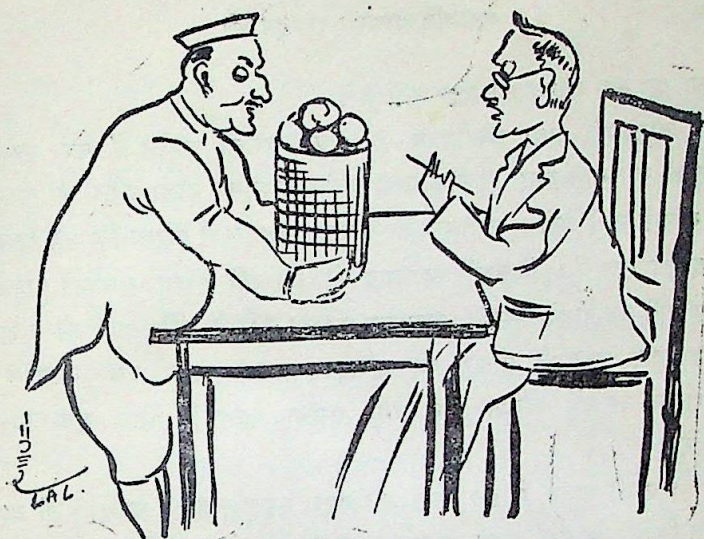
मैं इस बात का कायल नहीं हूँ कि इसको कला से प्रेम नहीं । है और अवश्य है । क्या संगीत, क्या चित्रकारी, क्या कविता हर एक से रुचि रखता है—यह सौन्दर्योपासक तथा प्रकृति का पुजारी है ।

उदाहरणार्थ कविता को ले लीजिए जैसा कि मैंने पहले उदाहरण दिया है कि वास्तव में ये दिन-भर इतना कविता करते हैं कि इन्हें शेक्सपीयर, मिल्टन आदि पढ़ने की बिल्कुल फुरसत नहीं—इसीलिये इस बात को ध्यान में रख कर समझदार बोर्ड ने इनके पाठ्यक्रम में ही कविता नहीं रखी है । कहिए, है नहीं बोर्ड वालों की अकलमन्दी ?

यही नहीं आप एक ऊँचे दर्जे के संगीतज्ञ हैं जरा ठहरिये, अभी ये अपने मनोरम संगीत-भवन में जायेंगे—इनके शब्दों में इनके संगीत-भवन का नाम है टाइप रूम । इसमें १५ सुन्दर हारमोनियम रखे हुए हैं । अहा ! जिस समय ये उनके स्वरों पर अपनी कोमल उंगलियों को चलाते हैं, तो संगीत इतना फूट निकलता है कि यह सफेद पर काले अक्षरों के रूप में प्रकट हो जाता है—तानसेन भी बेचारा इनके संगीत से डरता होगा—हाँ तो इनको संगीत से प्रेम है और अवश्य है ॥

अब चित्रकारी को लीजिए । चित्रकार तो यह प्रथम श्रेणी के हैं । जिस समय अपने रंगीन ब्रुश से अपने भूगोल के नक्शे में शुभ कोयलों की खानों को दिखाते हैं, सच मानिए, कनुदेसाई तथा नन्दलाल बोस का पेण्टिंग एक तरफ रह जाता है ।

हाँ, तो अब तय हुआ कि इनको कला से प्रेम है और एक ऊँचे दर्जे का प्रेम है—लेकिन अपना परिश्रम सफल मानेगा अगर इनकी तरफ से आप यह विचार बना लें कि यह एक कलाविद् है, क्योंकि लेखक स्वयं ही एक कामर्स का विद्यार्थी है ।



“भाई यह तो ठीक नहीं ?”

“मैं खरीद के थोड़े ही लाया हूँ। कल बच्चे की सुसराल से आये थे....”

चाटुकारिता भी एक कला है !

चाटुकारी के अर्थ हैं खुशामद। इस अद्वितीय कला को हम और भी नामों से पुकारते हैं, जैसे चापलूसी, चिलम भरना आदि।

इस कला का जन्म कब हुआ इसकी निश्चित तारीख नहीं बताई जा सकती, परन्तु यह अधिकार-पूर्वक कहा जा सकता है कि यह एक प्राचीन कला है। आप पूछना चाहेंगे कि साहित्य कला, कविता कला, शिल्प कला इत्यादि पर जब प्राचीन ग्रन्थ मिलते हैं तो चाटुकारी कला पर एक भी प्रामाणिक ग्रन्थ क्यों नहीं मिलता। दरअसल इस कला की यही विशेषता है। यह कला गुप्त कला है। प्राचीन चाटुकार जो इस कला के पारखी थे, उन्होंने इसे गुप्त ही रखा। वे नहीं चाहते थे कि इस महान कला का प्रचार अनाधिकारी व्यक्तियों में हो जिससे इसका महत्व कम हो जाय। उनकी इतनी दूरदर्शिता के होते हुए भी इस कला ने इतनी उन्नति की कि खुशामद कला के पारंगतों की संख्या जितनी आज है, उतनी पहले कभी नहीं थी। क्या किसी भी कला के

लिए यह कम गौरव की बात नहीं है ?

चाटुकारी हवा की तरह है, हवा चलती रहती है पर उसका प्रत्यक्ष रूप नहीं होता । ठीक उसी प्रकार खुशामद होती रहती है परन्तु दिखलाई नहीं देती । खुशामद करने वाला यह नहीं कहता कि वह खुशामद कर रहा है । जिसकी खुशामद की जा रही है वह समझते हुए भी यह नहीं कहता कि उसकी खुशामद की जा रही है और वही जो खुशामद करा रहा है तीसरे की खुशामद करने वाला बन जाता है । खुशामद का यह पहिया दिन रात घूमता रहता है बिना रुके, बिना ठहरे ।

अंग्रेजी राज्य में इस कला की बड़ी उन्नति हुई । उन्होंने तो यहां तक किया कि इस कला में दक्ष होने वालों को सर्टीफिकेट तक देना प्रारम्भ कर दिया । पर हमारी नेहरू सरकार इस कला की उन्नति के बारे में विशेष ध्यान नहीं दे रही है, यह दुःख की बात है ।

हमारे प्राचीन कवि तथा शास्त्रकारों ने इस कला की हृदय से प्रशंसा की है । खुशामद करने वाला क्या नहीं कर सकता, उसके लिए क्या कठिन है शास्त्रों में कहा गया है :—

सुवर्णां पुष्पितां पृथ्वीं प्राप्नुवन्ति जनास्त्रयः

शूरश्च कृतविद्यश्च चाशूक्ति ज्ञश्च योजनः ।

इस सुवर्ण रूपी पुष्पों से लदी हुई पृथ्वी का उपयोग बलवान, विद्वान् या चाटुकार ही कर सकता है । जीवन के हर पहलू में यह सफलता दिलाती है । आप किसी दफ्तर में काम करते हैं, साहब के घर कभी-कभी जाइए, साहब ये पूछें—कहो कैसे आना हुआ, तो दांत निकाल कर कह दो—हैं हैं, सिर्फ आपके दर्शन करने चला आया । फिर देखिए आपको वक्त पर तरक्की मिलती है या नहीं । जितना गुड़ डालियेगा उतना ही मीठा होगा । यदि साल में दो बार तरक्की चाहते हैं, मन-मानी छुट्टियां चाहते हैं, कम काम चाहते हैं, तो खुशामद की तादाद बढ़ानी पड़ेगी । कभी एक टोकरी फल ले जाइये । यदि साहब कहें—भाई यह तो ठीक नहीं । फौरन कहिये—साहब मैं खरीद के थोड़े

ही लाया हूँ। कल बच्चे की समुराल से आए थे और सब आपका तो है ही। लोग कहते हैं कि अमुक साहब तो बिलकुल खुशामद पसन्द नहीं। पर आप सच मानिए कि ऐसा हो ही नहीं सकता। रहीम-दास जी ने कहा है :—

नाद रीझि तन देत मृग, नर धन हेत समेत ।

ते रहोम पशु ते अधिक, रीझे हू नहिं देत ॥

पशुओं में तो चाटुकारी खूब चलती है। परस्पर प्रशंसति अहो रूपं अहो ध्वनि। ऊँट का विवाह था गधे मेहमान थे। आकर ऊँट से बोले—भाई तुम तो आज बहुत खूबसूरत लग रहे हो। ऊँट ने प्रेम-पूर्वक कहा—भाई गधे, तुम्हारा स्वर बहुत ठीक है, आज तो गाना ही पड़ेगा। लोग-बाग तो देवताओं तक की खुशामद करने में नहीं चूकते। बेचारा आदमी क्या चीज है।

यह कौन नहीं जानता कि स्त्रियाँ अपनी सुन्दरता की प्रशंसा सुन कर प्रसन्न होती हैं और खूब होती हैं। पति यदि चाटुकारी कला में विशेषज्ञ है, तो उसकी अपनी पत्नी से खटपट नहीं हो सकती। जब भगड़े के मौके आवेंगे तो यह कहकर कि तुम तीन बच्चों की मां हो गई अब भी इतनी सुन्दर लगती हो कि क्या कहूँ। मेरे तो पूर्व जन्म के पुण्य हैं कि तुम जैसी सुशील पत्नी मुझे मिली। मैं किस लायक था। उनके बच्चों को खिलाइये अवश्य खश होंगी। कल्पना कीजिए कि मित्रों के आग्रह से आप सिनेमा का सँकेराड शां देखने चले जाते हैं। घर में सूचना नहीं दे पाते। पत्नी खाना लिये बैठी है। आप उसके सामने आने में घबरा रहे हैं। घबराने की कोई बात नहीं यह कला आपकी सहायता करेगी। उनके पूछने पर आप कह दीजिये कि अपने बीमार मित्र को देखने चला गया था और तुम कहती हो सिनेमा ! तुम्हारे चांद से मुखड़े के सामने मुझे क्या आकर्षण है। मेरा सिनेमा तो तुम हो। खाना लाओ भूख लग रही है। फिर देखिये श्रीमती जी का गुस्सा काफूर हो जायगा।

भूठ बोलना भी इस कला का मुख्य अंग है। भूठ बोलना बुरा

है यह कौन नहीं जानता। लेकिन साहब किस बुराई में अच्छाई नहीं होती। खुशामद रूपी कमान में भूठा प्रशंसा रूपी तीर कहीं निशाने पर बैठ जाय तो फिर क्या बात है। चाटुकारी कला के गुणी जन तो यहां तक आदेश देते हैं :—

स्वामी दिन को रात कहें तो हम तारे दिखला देंगे।

अगर रात को दिन कह दें तो हम सूरज दिखला देंगे ॥

कहने का मतलब यह है कि जिसकी खुशामद की जाय उनकी हां में हां मिलाना भी एक कला है। जो नहीं कर सकते उन्हें कठिन अवश्य मालूम पड़ेगा परन्तु निराश होने की कोई बात नहीं।

चाटुकारी कला के लिये अतिशयोक्ति करना बहुत आवश्यक है। नवाबों के बारे में तो यह प्रसिद्ध है कि उनके दरबार में इस कला के कलाकारों को बड़े आदरपूर्वक रखा जाता था। एक नवाब साहब थे उनके दो खुशामदी थे—एक का नाम था हुसैनी और दूसरे का नाम था गफूर। नवाब साहब दैठे हैं। नवाब साहब शिकार खेलना चाहते हैं। प्रश्न यह है कि किसका शिकार किया जाय? हुसैनी कहता है कि हज़ूर एक शिकार मेरी राय में है। वाह कितना चालाक दौड़ने में हवा को मात करता है। नवाब साहब पूछते हैं कि भाईजान जल्दी से उसका नाम बताओ। हुसैनी कहता है कि हज़ूर लोमड़ी का शिकार कीजिये। फौरन दूसरा खुशामदी कहता है, हां, हज़ूर आज तक किसी ने यह शिकार नहीं किया। इतना कलेजा किसका है? हौसला चाहिये। ये शेर का या चीते का शिकार नहीं कि गये और मार आये। हुसैनी फिर कहता है—हज़ूर शेरों को भी नाकों चने लोमड़ी ही बिनवाती है। बस फिर क्या था, नवाब साहब मूछों पर ताव देकर कहते हैं मैं भी इस मनहूस से नाकों चने बिनवा कर दुनिया के सामने एक नई मिसाल रखूंगा। हुसैनी कहता है हज़ूर सदेक, गफूर कहता है हज़ूर पर कुर्बान जाऊं। और फिर महफिल उठ जाती है। इस कला पर जवानी तो मुगल काल में ही आई।

इस कला के लिये हाजिर जवाबी बहुत आवश्यक है। खुशामद

करने वाले को जिसकी खुशामद की जाती है नब्ज पहचाननी पड़ती है। यदि वह यह नहीं जानता तो उसकी किसी दिन भी कलाई खुल सकती है। एक पंडितजी थे। वे एक राजासाहब के मुँह लगे हुए थे। खुशामद कला का थोड़ा-सा अभ्यास किया था। मौज करते थे। एक दिन राजा बोला—पंडितजी बैंगन बहुत बुरा, न रूप का न रंग का। पंडितजी तुरन्त मुँह बिचका कर बोले—महाराज उसे देखकर तो जी मिचलाता है। ऊपर भट्ठी पूँछ भी निकली रहती है। कुछ दिनों बाद राजा साहब ने फिर पंडित जी से कहा—पंडितजी देखने में बैंगन अवश्य बुरा लगता है, परन्तु खाने में तो स्वादिष्ट है। पंडितजी तुरन्त बोले—सो तो है ही महाराज, और देखने में ही बुरा कौन कहता है। नीलाम्बर रंग कितना सुन्दर लगता है। मस्तक पर मुकुट शोभायमान है। अहा हा, क्या सुन्दर छवि है बैंगन की।

मेरी गली में एक तमोली की दुकान है। दिन रात चलती है। यह हर एक से खुशामद से पेश आता है। मास्टर साहब दुकान से निकलेंगे तो प्रिंसीपल साहब कहेगा। यदि मास्टर साहब यह कहें कि भाई हम मास्टर हैं, हमें मास्टर ही कहा करो। वह फौरन कह देगा कि हुजूर अभी नहीं हैं दो चार दिन म हो जायेंगे। सिपाही निकलेगा उसे दरागाजी कहेगा और हर बात में हुजूर सरकार का मखन सदैव लगाता है। लोग बाजार की बड़ी दुकानें छाड़कर गली में इस तमोली की दुकान पर पान खाने आते हैं।

लेकिन अब इस कला का विकास हो गया है। अब भले आदमी भी इसका उपयोग करते हैं, इसलिए परिष्कृत हो गई है। सम्पादक भी यह जानते हुए कि प्रकाशक जी एक नम्बर के पूँजीपति हैं, उनका ८० वर्ष की बूढ़ी दादी की मृत्यु का सन्देश प्रथम पृष्ठ पर काला चौखटा लगाकर अवश्य छापेंगे। प्रसिद्ध लेखक होना चाहते हैं सम्पादक जी की खुशामद कीजिये। अच्छे लेखक का लेख भले ही न छपे पर आपकी पहिली रचना के साथ-साथ फोटो अवश्य प्रकाशित हो जायगा।

चतुर व्यापारी भी इसका उपयोग करते हैं। शहर में नया

अफसर आया और वे पहुँचे। हुजूर कोई तकलीफ तो नहीं है। आधी रात हुकुम भिजवा दीजिये। ताँगा भिजवा दूँ। डाक्टर भिजवा दूँ। और फिर उनके ठाठ हैं। “हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता” कहाँ तक तारीफ़ की जाय। इस कला के विरोधियों की भी कमी नहीं है। आप जानते हैं कि लोग बुराई करने में तो चूकते नहीं। एक विचारक का कहना है कि भिन्न रुचिः लोक लोगों के अलग-अलग मत हैं। लेकिन समझदार लोग तो ‘जैसी चले बयार पीठि तब तैसी दीजे’ के अनुसार काम करते हैं। उनका कहना है कि समय को देखकर जो उचित हो वह करना चाहिए। यदि दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति करना चाहते हैं तो इस कला में पारंगत होना ही पड़ेगा। अन्त में यही लिखना काफी होगा कि :—

सकल पदार्थ या जग मांही, बिना खुशामद पावत नांहीं।



...कैसा भी है आदमी तो काम का है ।

ये अवसरवादी नेता !

लाला बाघम्बरी प्रसाद जी बड़े करीने के आदमी हैं। आप यदि उनसे मिलें, तबियत खुश हो जाय। खातिरदारी के क्या कहने। बिना कुछ खिलाये-पिलाये मजाल है कि आपको वे छोड़ दें। शहर में उनका रुतबा है। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही उनको दिलोजान से चाहते हैं। बातचीत करेंगे बहुत दबी जवान से, क्या मजाल कि पास वाला आदमी सुन तो ल, हँसेंगे तो मूँछों में। नम्रता तो उनके सम्मुख स्वयं नतमस्तक हो जाती है। हवा देखकर बात करते हैं। उनका सिद्धान्त है “जैसी चले बयार, पीठ तब तैसी दीजै”।

पढ़ने में अधिक समय नष्ट नहीं किया। बुद्धि ने भी साथ नहीं दिया। मिडिल में तीन बार फेल हुये लेकिन इस बात को गुप्त रखते हैं। अब तो सबसे यह कह देते हैं कि असहयोग-आन्दोलन में भाग लेने के कारण पढ़ाई छोड़ देनी पड़ी। वैसे घर पर ही इतना स्वाध्याय कर लिया है कि अनेक भाषाओं के पंडित माने जाते हैं।

भारतवर्ष स्वतंत्र हुआ। इन्होंने भी अपनी केंचुली बदल दी।

पहले तन पर ठेठ विलायती वस्त्र धारण करते थे। अब खदर-धारी हो गये। श्वेत खदर की टोपी, कुरता, धोती, पैरों में अहिंसक चप्पलें। बगल में “विनोबा के प्रवचन” रहते हैं। अफसरों से जब भी मेल था, अब भी मेल है। पहले कलकटर साहब की रोज हाजिरी देते थे, आज-कल मिनिस्टर्स की खुशामद में लगे रहते हैं। उनका धर्म तो चिलम भरना है। पहले “वार-फंड” में चन्दा देते थे, अब स्वतंत्रता-दिवस के दिन सारे बाजार में सजावट कराते हैं।

तिकड़म लग गई, नगरपालिका के सदस्य चुने गये। सेवा की, मेवा मिली। लोगों के टैक्स कम करा देते हैं। लोग उन्हें कुछ भेंट कर जायें इसमें उनका क्या दोष? औरों के नलों में पानी न आये, पर इनका नल चौबीस घण्टे चलता रहता है। घर पर चुंगी के कर्म-चारियों का जमघट लगा रहता है।

ये जन-सेवक हुए साथ में श्रीमतीजी भी जन-सेविका हो गईं। वे भी मातृ-मंडल की संयोजिका हो गईं। एक शिशु मंदिर भी चलाती हैं। सरकार से सहायता मिलती है। अपना खाली मकान इस बहाने अच्छे भाड़े पर उठ गया है। सरकारी जीप में देहातों में भी जाकर वहाँ की नारियों में जागृति पैदा करती हैं। कभी-कभी उस जीप में सपरिवार सैर भी होती है। पूरा परिवार ही देश-सेवा तथा राष्ट्र-निर्माण में लगा हुआ है।

बच्चे “कान्वेंट” में पढ़ने जाते हैं। पिताजी को “डैडी” तथा अम्माजी को “मम्मी” कहते हैं। खर्चा काफी पड़ता है। सब भगवान् निभाते हैं। ये दुनिया की सेवा करते हैं, दुनिया इनकी मदद करती है। टेलीफोन भी लग गया है। लग क्या गया है, विवश होकर लगवाना पड़ा है। समय कम है, काम अधिक है। टेलीफोन से समय की बचत होती है। कई फर्मों में भी साभा है। लेकिन ये अपना नाम उसमें नहीं रखते। काम सब चलता है। लोग स्वयं आकर जब साभीदारी के लिये कहते हैं तो मना भी नहीं किया जाता। शिष्टाचार का भी तो कुछ तकाजा है। वाद में उन्हें टैक्सों से बचवाना तथा परमिट

इत्यादि दिलाने में मदद करना उनका पावन कर्तव्य हो जाता है।

चुनाव के दिनों में आप बहुत व्यस्त रहते हैं। सारे जिले की चुनाव-मशीनरी आप ही चलाते हैं। उन दिनों तो आपको मरने की भी फुरसत नहीं मिलती। इनमें उन दिनों हनुमान जी की सी शक्ति आ जाती है दिन और रात काम करते हैं। इस कला में आप पारंगत हैं। ऐसे परमार्थी हैं कि स्वयं चुनाव नहीं लड़ते, दूसरों के लिए जान लगा देते हैं। अब आप ही विचारिये कि जीत कर वे लोग इनका काम न करेंगे तो किसका करेंगे? आज का युग तो आदान-प्रदान का है। इन दिनों जम के काम करते हैं फिर तो मौज ही मौज है। साधना कभी निष्फल नहीं जाती। यद्यपि जिनकी चुनाव में वे मदद करके उन्हें सफलता दिलाते हैं वे भी बाद में इनके बारे में अच्छी राय जाहिर नहीं करते। कह देते हैं कि कैसा भी है आदमी तो काम का है। चुनाव जीतने के लिए सभी तरह के आदमियों की जरूरत पड़ती है।

श्रमदान में भी पीछे नहीं हैं। जिले में जितने श्रमदान-यज्ञ हुए, आपके ही संयोजन में हुए। फोटो उतरते समय फावड़ा इन्हीं के हाथ में होता है। बाद में केवल निर्देशन करते हैं। समय का जो अभाव है। वन-महोत्सव के दिनों में भी असंख्य पेड़ लगवाये। यद्यपि बाद में सभी सूख गये। इनका क्या दोष? लगाने थे लगा दिये। उस समय वही हवा थी।

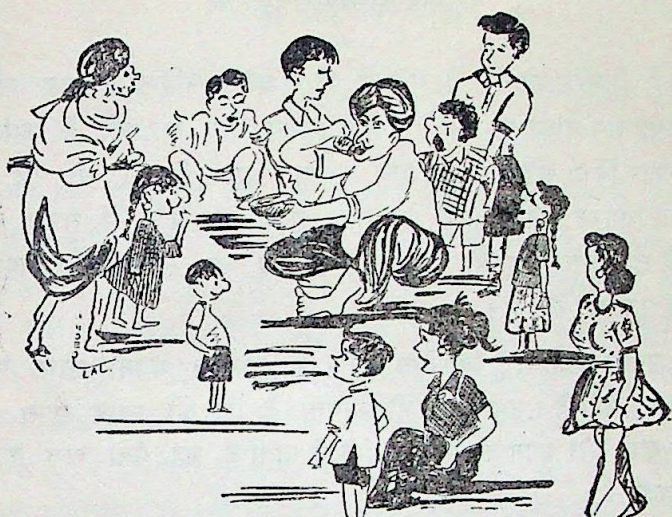
भाषणा देने से घबराते हैं। आवश्यकता पड़ने पर छपा हुआ भाषणा पढ़ देते हैं। प्रेमी-जन लिख भी लेते हैं, छपा भी लाते हैं, यह तो पढ़ भर देते हैं। इन पर इतना समय कहाँ कि लिखने का भ्रंश करते फिरें। साहित्य तथा संगीत में भी कदम रखते हैं कि कहीं लोग इन्हें बिना पूँछ तथा सोंग का पशु न समझ बैठें। साहित्य-सेवा के नाम पर मृत तथा जीवित कवि तथा लेखकों की जयन्तियाँ मनाते हैं। एक छोटा-सा भाषणा "साहित्य के महत्व" शीर्षक किसी प्रेमी ने बहुत दिनों पहले लिखकर दे दिया था, उसे ही कंठस्थ कर रक्खा है। हर जयन्ती में वह भाषणा उड़ेल देते हैं। संगीत सम्मेलन का भी संयोजन

सफलतापूर्वक कर देते हैं। कुछ रागों के नाम रट रक्खे हैं। “अहा हा, अहा हा” बिना ही समझे कह देते हैं। लोगों में धाक जमा रक्खी है कि आप संगीत के भी अच्छे मर्मज्ञ हैं।

बाहर के नेता जब आते हैं तो स्टेशन पर स्वागत-सत्कार का कार्य इन्हीं को सौंपा जाता है। बापिसी में इनका पता ले लेते हैं अपना पता दे देते हैं। वाद में पत्र-व्यवहार करते हैं। कुछ होने को होता है हो जाता है अन्यथा डाक-व्यय के पैसे बट्टे-खाते की रकम में डाल देते हैं। कभी न कभी तो निशाना ठीक बैठ ही जाता है। सब घाटा एक बार में ही पूरा कर लेते हैं। अध्यवसायी हैं। लगे रहते हैं। हिम्मत हारना नहीं जानते।

विशेष कोई काम नहीं दिखलाई पड़ता, लेकिन दिन भर परेशान दीखते हैं। किसी कार्यालय में कोई नौकरी नहीं करते, लेकिन सदैव समयभाव रहता है। जो देखते हैं, अचरज में पड़ जाते हैं। श्री वाघम्बरी जो इन लोगों की नासमझी पर केवल मुस्करा भर देते हैं। इनके विरोधी कहते हैं कि गर्दभराज शेर का वाघम्बर ओढ़े हुए जंगल के राजा बने बैठे हैं। असलियत कब तक छिपेगी? वाघम्बरी जी भी अपने मन में सब समझते हैं। वे भविष्य की चिन्ता नहीं करते। वे तो वर्तमान के राजा हैं। इनका नारा—“जलने वाले जला करें, किस्मत हमारे साथ है।”

पढ़े लिखे लोग भूक मारते फिरते हैं, ये क्या करें? किस्मत उनकी। अपना शिष्य किसी को बनाते नहीं। भाई कला उनकी, भाग्य उनका, हथकंडे उनके और वक्त उनका। राम करे जैसी उनकी निभ रही है वैसी सबकी निभे।



“...व्यर्थ में दवाइयाँ मत लिया कीजिये ?”

“यार पैसे तो नहीं खर्च होते, मुफ्त की चीज कभी नुकसान नहीं करती।”

श्री मुफ्तानन्दजी

भगवान ने इस संसार-रूपी अजायबघर में भांति-भांति के जीव-जन्तु रख छोड़े हैं। कुछ काले, कुछ गोरे, सुन्दर, असुन्दर, भोले और जल्ताद। अलग-अलग स्वभाव, अलग-अलग चाल-ढाल। मेरे पड़ोस में एक सज्जन रहते हैं नाम है उनका मुफ्तानन्दजी। यथा नाम तथा गुण। ‘माले मुफ्त दिले बेरहम’। क्या मजाल कि कहीं दावत का भूठा भी निमंत्रण मिल जाए और वह जाने से रुक जाएँ—चाहे बीमार ही क्यों न हों और चाहे बाद में कुछ भी क्यों न भुगतना पड़े। ऐसे ही एक अवसर पर वह दावत में जा रहे थे। मुझसे बोले—“भाई, अरे दो ढाई रुपए का खाऊँगा, बारह आने का मिक्चर पी लूँगा तब भी फायदे में ही रहूँगा।

‘मुफ्त का चन्दन घिस मेरे नन्दन’ ब्रजभाषा की लोकोक्ति है। श्री मुफ्तानन्द इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। शौक सब करेंगे—पान का भी

शौक है सिगरेट भी पीते हैं, सुंघनी भी सूंघते हैं लेकिन ये सब शौक जान-पहचान वालों की जेब से होते हैं। आप पान खा रहे हैं, आपसे नमस्कार किया और पान पर हाथ बढ़ाया। आप सिगरेट पी रहे हैं, आपसे सिगरेट भपटी। यहीं तक नहीं, यदि आप ट्रेन में सफर कर रहे हैं तो किसी अजनबी से भी निस्संकोच रूप से अपने आवश्यक शौक पूरा कर लेते हैं।

उनका सिद्धान्त है कि ऐसा करने से दुर्व्यसन अपनी सीमा पार नहीं कर पाते हैं। उनकी यह भी मान्यता है कि जो स्वाद मुफ्त का पान खाने और मुफ्त की सिगरेट पीने में आता है वह पैसा खर्च करने पर कहां ?

एक दिन मैं बाजार से लौटा। देखा कि श्रीमान मुफ्तानन्द गली में एक कटी पतंग को लूटने के चक्कर में बेतहाशा दौड़े जा रहे हैं। यदि वह उन्हें मिल गई तो उसे प्राप्त करके कृतकृत्य हो जाएंगे। यद्यपि पतंग उड़ाने की अवस्था बहुत पीछे छोड़ चुके हैं तथापि उस मुफ्त की पतंग को छोड़ कैसे दें !

मेरे घर दो दैनिक पत्र रोजाना आते हैं। मुझे उनकी प्रसादी जभी मिल पाती है जब कि श्रीमान मुफ्तानन्द उनका भोग लगा लेते हैं। मौहल्ले में कौन-कौन लोग अखबार मंगाते हैं, उन सबकी नामावली उन्हें कंठस्थ है। समय-समय पर सब पर कृपा करते हैं। उनका कथन है कि प्रत्येक मनुष्य को अपने ज्ञान-वर्द्धन के लिए अधिक-से-अधिक समाचार-पत्र पढ़ने चाहियें, किन्तु पैसा खर्च करके समाचार-पत्र पढ़ना वह गौ-हत्या समझते हैं।

उन्होंने भारतवर्ष की जन-संख्या बढ़ाने में काफी योग दिया है। ईश्वर की कृपा से उनके छः लड़के और चार लड़कियाँ हैं। शिक्षा सबको देना वह अपना पावन कर्तव्य समझते हैं। इसके लिए सदैव वह फीस माफ कराने के चक्कर में स्कूलों के मैनेजरों और प्रिन्सिपलों के घर पर धरना देते रहते हैं। अपने इस लक्ष्य की सिद्धि के लिए साम, दाम, दंड और भेद सबका प्रयोग करते हैं। उनकी तिकड़म से

चाहे योग्य और गरीब विद्यार्थी रह जाएं लेकिन वह अपने किसी बच्चे की फीस नहीं देंगे।

एक दिन सुबह ही मेरे घर पधारे, बोले—“भाई, जरा काली-दास-ग्रन्थावली दे दो।” मैंने कहा—“आपको उसकी क्या आवश्यकता पड़ गई?” उत्तर दिया—“मेरे एक मित्र को चाहिए, उससे मेरा लाभ होने वाला है।” अब बताइए लाभ होगा उनका और पुस्तक चाहिए मेरी। मैंने कहा—“डियर मुप्तानन्द, पुस्तकें देने के बाद बहुत कम वापिस आती हैं। यदि आप दो दिन में लौटा दें तो ले जाइए।” सारांश यह कि वह पूरा वायदा करके ले गये। आज दो वर्ष हो गये, पुस्तक वापिस करने का नाम नहीं लेते। इस प्रकार अनेक पुस्तकें इकट्ठी करके उन्होंने अपने घर पर एक छोटा-सा पुस्तकालय स्थापित कर लिया है। पर वह सब पुस्तकें अलमारी में बंद रखते हैं क्या मजाल कि आपकी दृष्टि भी उन पर पड़ जाय।

सिनेमा देखने का भी उनको शौक है। ‘फ्री पास’ प्राप्त करने में वह अत्यन्त कुशल हैं। उन्हें यह किसी प्रकार पता लग जाना चाहिए कि आप सिनेमा जा रहे हैं तुरन्त आपके साथ। जेब खाली। टिकट तो आप लेंगे ही और वह सिनेमा देखकर आपको कृतार्थ करेंगे ही। एक दिन मुझ पर कृपा दृष्टि हुई। कहीं से एक थियेटर का पास भाड़ लाये थे। मुझे जबरदस्ती अपने साथ ले गये। वह थियेटर रात्रि के ६ बजे प्रारम्भ होने को था, लेकिन १२ बजे प्रारम्भ हुआ और ४ बजे प्रातः समाप्त हुआ। मैंने बीच में कई बार उनसे घर वापिस चलने को कहा, लेकिन बराबर यही दुहराते रहे—“मुफ्त में क्या ब्रा है।” उनका विचार है कि मुफ्त देखने को मिले तो रात भर की नींद एक रद्दी-से-रद्दी थियेटर देखने के लिए बलिदान की जा सकती है।

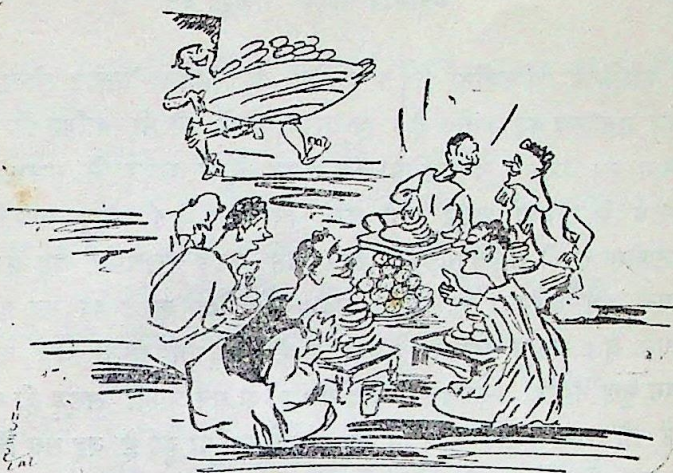
नगर में पानी के बरफ की एक फैक्टरी खुली। अपने विज्ञापन के लिए फैक्टरी के मालिक महोदय ने दो दिन तक मुफ्त बरफ बांटने का ऐलान शहर में करवा दिया। मुफ्तखोरों के सरताज हमारे मुप्तानन्द जी भी वहाँ घंटों समाप्त करके क्यू में योगी की प्रकार साधना कर-

करके एक-एक टुकड़ा बरफ का दोनों दिन लाए। पहले दिन अपनी जूती वहाँ खो आए और दूसरे दिन नई कमीज वहाँ फड़वा आए, किन्तु मुफ्त में मिले उस बरफ के आगे यह नुकसान नगण्य था।

श्री मुफ्तानन्द जी की तबियत कभी खराब न हुई हो यह बात नहीं है; किन्तु आज तक दवा तो क्या शीशी के पैसे तक भी उन्होंने अपनी जेब से खर्च नहीं किए। डाक्टर, वैद्य, हकीम सभी से दोस्ती है और आखिर में सलामत रहे सरकारी अस्पताल। आप पूछेंगे कि डाक्टर तो किसी के दोस्त नहीं होते। बस यही तो कबीर का रहस्यवाद है। मुफ्तानन्द जी बड़े उस्ताद हैं। डाक्टर तो दुनिया की नब्ज टटोलते हैं और मुफ्तानन्द जी डाक्टरों की। किसी डाक्टर को अपनी खुशामद पसन्द है तो उसकी खुशामद, वैद्यजी कीर्तन के शौकीन हैं तो उनके यहां कीर्तन, गरज यह कि किसी न किसी प्रकार से पहले उनसे मित्रता और फिर मुफ्त में दवाई।

वैसे यदि वह बारह महीने बीमार न भी हों, तो अस्पताल से टानिक तो नित्य भरवा ही लेते हैं। मैंने एक दिन कहा कि व्यर्थ में दवाइयां मत पिया कीजिये। बोले—‘यार पैसे तो नहीं खर्च होते, मुफ्त की चीज कभी नुकसान नहीं करती।’

इहलोक को मुफ्त में सुधारकर मुफ्तानन्द जी अब परलोक में भी मुफ्त जीवनयापन करने की टोह में रहते हैं। उनका दृढ़ विश्वास है कि जब भगवान ने ही इस प्रकार आनन्द से निभा दी तो स्वर्ग का टिकट खरीदने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। भगवान मुफ्त में ही उनकी मुक्ति कर दें, यह प्रार्थना करते हुए मुफ्तानन्द जी को हम साष्टांग दण्डवत करते हैं।



घी के चकाचक चासनी के हलकी के भले,
भांग के छनयन कों प्यारदार बूंदी के ।

मोदक-महिमा

मोदक की महिमा अपरम्पार है। जनता में ये 'लड्डू' अथवा 'लड्डुआ' नामों से प्रचलित हैं। महात्मा तुलसीदास जी ने ठीक ही कहा है कि "सकल पदारथ या जग मांहीं, करमहीन नर पावत नाहीं"। आज तक इतिहासकार तथा अन्य अनुसन्धानकर्ता इस बात का पता नहीं लगा पाये कि लड्डुओं का आविष्कार किसने किया। पी० एच० डी० डिग्री लेने वालों को इससे सरस तथा सरल विषय अनुसन्धान के लिये नहीं मिल सकता। जो अनुसन्धान करेगा उसे अपनी जीभ से, संसार में जो नाना प्रकार के लड्डुओं की किस्में हैं, उन्हें चखना पड़ेगा तभी वह यथार्थ तथा मौलिक खोज कर सकेगा।

जिस प्रकार हिन्दी के लेखक को 'मंगला प्रसाद-पारितोषिक' प्राप्त करने पर प्रसन्नता होती है उसी प्रकार एक पेदू परिणत जी को लड्डू मिलने पर होती है। जिस क्षण उनका प्रिय लड्डू उनके गले में होकर उदर में पहुँचता है तो बैकुण्ठ धाम मृग्यलोक में ही दृष्टि-गोचर होने लगता है।

दार्शनिक दृष्टिकोण से आप देखें तो आपको प्रतीत होगा कि लड्डू ब्रह्माण्ड का प्रतीक है। अध्यापक लोगों को भी चाहिए कि जब दुनिया का आकार विद्यार्थियों को समझावें तो लड्डू से समझावें। वास्तव में दुनिया लड्डू की तरह ही गोल है। लड्डू सामाजिक दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण है। आप जिसे लड्डू खिलायेंगे वह अवश्य आपसे प्रेम करेगा। सामाजिक सद्भावना पैदा करने का यह प्रमुख साधन है। लड्डू खाने से वाणी में भी मधुरता आती है। कड़वे वचन मुख से नहीं निकलते। यदि संसार के सब प्राणी लड्डू ही खाने लगें तो अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में जो अशान्ति फैली हुई है वह सब हिरन हो जाय। नेहरू जी को 'पंचशिला' के सिद्धान्तों के प्रचार की आवश्यकता ही न रह जाय।

अखिल भारतीय चौबे कान्फ्रेंस ने एक विशेष सम्मेलन हाल ही में इसी बात का किया था कि यह पता लगाया जाय कि लड्डुओं का इतिहास कितना प्राचीन है? उसमें यह निश्चित हुआ कि ब्रह्मा जी ने लड्डू तथा सृष्टि की रचना साथ-साथ की है। प्राचीन कवियों की कविताओं से इस धारणा की पुष्टि होती है कि देवताओं का लड्डू प्रियभोज्य था। विशेषकर विघ्न-विनाशक गणेश जी तो लड्डू प्रचारक आन्दोलन के प्रमुख नेता थे। एक कवि जो लड्डू खाते हुए गणेश जी का वर्णन करते हैं :—

कैसे खूबसूरत कहाए नंदनंद

सोतो दही और साखन के मारे फोर भडुआ।

लला कवि देवी जी सिहावें छुके चना देख,

भोलाजी सिहावें देखि पानी भरो गडुआ।

बामन सिहावें पाइ न्योतो जब कभू,

जाने कौन देव देवतान मं अगडुआ।

हाथी के से कानवारो, सूंडवारो, दांतवारो,

मूंसे को सवार तौंदवारो खाइ लडुआ।

आगे चलकर कवि महोदय गणेश जी से प्रार्थना करते हैं कि

महाराज, लड्डुओं को थोड़ी तादाद में खाइये नहीं तो आपकी जीभ छिल जायगी :—

थोरो खाउ परम प्रवीन गनराज,
न तो खाते-खाते महाराज जीभ छिल जायगी ।
ललाकवि मोदक मनोहर बने हैं सही,
जिनें देखि-देखि वेग भूख पिल जायगी ।
पीरे-पीरे गोल-गोल मोठे-मोठे स्वाद वारे,
कसर किए हू खूब नर टिल जायगी ।
मोटाई मिल जायगी लुटाई के करत तुम्हें,
बोझ धरें मूसे की हू पूँछ हिल जायगी ।

वास्तव में लड्डुओं की सुन्दरता का वर्णन कहां तक किया जाय, पीतवर्ण, गोलाकार । कृष्ण जी के पीताम्बर का वर्ण भी पीत ही होता है । आकार में शिर्वालिंग जैसा होता है । कवि कहता है :—

“पीत पुखराज त्यों पिरोजा पीत पीत फूल,
जानी हम जानी ये पीत के वरन हैं ।
लला कवि हरिजू के बसन सुहावें पीत,
तेऊ अलसेट न पेट हैं के भरन हैं ।
थैली खोल बैठे ताके कारज करन,
मद मोद वितरण जन असरन सरन हैं ।
बूंदी झारमा के जिनै छकत उमा के बांके,
दहू खुरमा के लड्डू तारन तरन हैं ।”

लड्डू किसी नवेली नायिका से कम नखरे नहीं करते यदि नाराज हो जायें तो बहुत दिन दर्शन न दें । उनकी आराधना करनी पड़ती है उन्हें मनाना पड़ता है तभी पुनः वे कृपा करते हैं । लड्डू महाराज का यशोगान करते हुए कवि कहता है :—

“लड्डू महाराज करें रावरो बड़ाइ कहा,
अटक मिली करो मजा है अटकन में ।
लला कवि केते भांग छान-छान बैठे तिन्हें,
हटक मिलो करो मजा है हटकन में ।

केते मोद मानिनि कों मन मोद देने,
 मटक मिलो करो मजा है मटकन में ।
 लटक मिलो करो औ झटक मिलो करोजू,
 खटक मिलो करो मजा है खटकन में ।

ऐसे वन्दनीय हैं लड्डू महाराज ? चमत्कार को नमस्कार करना ही पड़ता है । ऐसे लोकप्रिय एवं आदरणीय लड्डू जी महाराज की सेवा में एक प्रशस्ति और उपस्थित करके अपनी श्रद्धा के फूल उनके चरणारविन्द में अर्पित करते हैं :—

जित-तित धाम-धाम देखिये निगाह पसार,
 सकल समाज में बिहारदार बूंदी के ।
 लला कवि और हू अनेक देव देवन कों,
 भोग भूमि देवन कों सारदार बूंदी के ।
 घी के चकाचक चासनी के हलकी के भले,
 भांग के छनैयन कों प्यारदार बूंदी के ।
 छलक लिलारदार अतिरिझवारदार,
 बार-बार अधिक बहारदार बूंदी के ।





सूम पत्नी से कहै सुन सपने की बात.....
अरी जाग ना परोँ तो में रुपया दे डारो हों ।

कंजूस और कविगण

कंजूस मानव जाति का एक विशिष्ट प्राणी होता है । इसे 'सूम' तथा "मक्खीचूस" नाम से भी पुकारा जाता है । इसकी चमड़ी चली जाय पर यह दमड़ी खर्च नहीं कर सकता । इनके बारे में एक लोकोक्ति प्रसिद्ध है "जोड़-जोड़ मर जायेंगे, और माल जमाई खायेंगे !" इनका धन धरती में गड़ा रहता है । ये उसमें हवा नहीं लगाने देते । पैसे खर्च करने में इनके प्राण निकलते हैं । ये हर चीज का मूल्य रुपये आने पाई से लगाते हैं । जैसे भक्त भगवान की पूजा करता है वैसे ही ये पैसे की पूजा करते हैं । इनको सपनों में भी रुपया दीखता है ।

इनका वश चले तो दुनिया छोड़ते समय अपने जमा किये हुए धन को अपने साथ ले जायें । परमात्मा का यह अन्याय है कि जाते समय इन्हें एक अर्धेला भी साथ नहीं ले जाने देता । पुराने लोगों का विश्वास है कि सूम मरने के बाद सर्प बनकर अपने धन की रक्षा करता है । कुछ भी हो, चाहे सर्प बनकर ही सही किन्तु अपने धन के

प्रति ऐसा प्रेम प्रशंसनीय है ।

अपने बारे में तो आप स्वयं जानते होंगे लेकिन अपने पड़ोस में आपने कोई न कोई सूम अवश्य देखा होगा । यदि पहचानते न हों तो आपको पहचानने की तरकीब मैं बताये देता हूँ । वे स्वयं हर समय ऐसी वेशभूषा में आपको मिलेंगे मानों अभी स्मशान से सीधे लौटकर चले आ रहे हों । जेठ की दुपहरी में भी वे आपको बिना जूता छतरी के सड़क पर टहलते मिल जायेंगे । यदि आपका दुर्भाग्य हो और आप उनसे रुपये मांगने जायं तो पहले तो हाथ ही नहीं धरने देंगे और यदि राजी भी हो जायं तो २ रु० सैंकड़ा ब्याज लिखायेंगे तथा यदि २००) रु० दे रहे होंगे तो दस्तावेज ४००) रु० की पर आपके हस्ताक्षर करायेंगे ।

उनके बच्चे आपको ऐसे दिखलाई देंगे मानो उनके मां-बाप दोनों मर गये हों, वे अनाथ रह गये हों । जिस समय शाम को ये अपनी रोजी की आमदनी संभालते हैं तथा पुरानी पूंजी में जोड़कर नया जोड़ लगाते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि किसी योगी को बहुत वर्षों बाद ब्रह्म-दर्शन हुए हों ।

यदि खाना खाये बिना काम चल सकता तो ये भोजन भी न करते । इतना तो अब भी करते हैं कि एक बार ही भोजन करके अपना कार्य चला लेते हैं । त्योहारों के दिन दुनिया खुशी मनाती है, कंजूस रोते हैं क्योंकि उन दिनों कुछ न कुछ खर्च करना पड़ता है । वीमारी की तो ये चिन्ता ही नहीं करते । प्रकृति स्वयं अच्छा करदे तो करदे वर्ना डाक्टर को रुपया देने से स्वर्ग की यात्रा करना अधिक उचित मानते हैं । दान-पुण्य करने को गौ-हत्या समझते हैं । भिखारी को दरवाजे पर देखते ही इन्हें दिल का दौरा होने लगता है ।

सदैव लक्ष्मी देवी की आराधना में लीन रहते हैं । लक्ष्मी को समझाते हुए सूम जी कहते हैं:—

दाता घर होती तो कदर तेरी नाहिं होती,

आई है भले घर बधाई बजवाउरी ।

खान तैखाने खसखाने में निवास करि,
होउ ना उदास चाव चौगुनो बड़ावरी ।
खाऊं ना खवाऊं मर जाऊं तो सिखाय जाऊं,
यही पूत नातीन कूँ अपनो सुभावरी ।
दमरी न देंहुं कभू भूल के भिखारिन कूँ,
सूम कहे सम्पत्त ते बैठी गीत गाउरी ।

सच है, सम्पत्ति को सूम के घर को सी निश्चिन्तता कहाँ मिलेगी ?
दानी के घर उसकी ऐसी कदर कहाँ हो सकेगी ? सूम तो अपने
मरने के बाद का भी आश्वासन दे रहा है कि मरने के बाद भी वह
अपने बेटा, नातिन को सिखा जायगा कि सम्पत्ति को नष्ट न होने दें ।

ये तो रही जीवित अवस्था की बात । एक दिन सपने में कंजूस
जी महाराज किसी कवि की कविता सुनकर इतने प्रसन्न हो गये कि
उसे एक रुपये का पुरस्कार प्रसन्नता से देने का विचार कर लिया ।
यदि उनका स्वप्न न टूट गया होता तो वे उस रुपये को दे भी देते ।
कितना महान अनर्थ हो जाता ? सुबह होने पर पत्नी से यह समाचार
सूम जी सुनाते हैं—

“सूम पत्नी से कहै सुन सपने की बात,
रात के समें में हाय बरबस हारो हों ।

चाँदी में खरौ हो जोर-जोर के करौ हो,
खोद भुसमें धरो हो फेर हाथ में निकारो हो ।

‘ग्वाल कवि’ ताही समें एक कवि आयो तहाँ,
कवित पढ़ौ हो कछु दँवो अनुसारो हो ।

होतो कुलदाग बड़े जेठेन को भाग,
अरी जाग ना परों तो मैं रुपैया दे डारौ हो ।

वास्तव में यदि कवि को रुपया दे देते तो अवश्य सूमजी के कुल
में दाग लग जाता । अच्छा हुआ जो भगवान ने उनकी नींद खोल दी ।

कंजूस जी को किसी ग्रह के शयन करने के हेतु ज्योतिषी ने ग्राम
दान करने को कह दिया । विवश हो गये । सब्जी-मंडी छान के सस्ते

से सस्ते आम छांट कर लाये। इतने छोटे कि ऐनक लगाने से भी न दीखें। बेनी कवि उनका वर्णन करते हैं:—

चींटी को चलाबै को ? मसा के मुख आपु जाय,
स्वास की पवन लागै को सनु भगत है।

ऐनक लगाये मरु मरु कै निहारै जात,
अनु परमानु की समानता खगत है।

‘बेनी कवि’ कहै हाल कहां लौं बखान करौं,
मेरी जान ब्रह्म को विचारिबो भुगत है।

ऐसे आम देने दयाराम मन मोदि करि,
जाके आगे सरसों सुमेरु सो लगत है।

एक वंजूस जी की सुनिये कि उनको ‘देने’ से इतनी चिढ़ है कि ‘द’ अक्षर का उच्चारण ही नहीं करते। जहां ‘द’ अक्षर की आवश्यकता पड़ती है वहां और शब्दों से काम चला लेते हैं। उदाहरणार्थ ‘देवता’ शब्द का उच्चारण नहीं करेंगे, ‘सुर’ शब्द से काम चलावेंगे, ‘दानव’ के स्थान पर ‘असुर’ कहेंगे—‘दर्पन’ को ‘आरसी’ तथा ‘दाख’ को ‘मुनक्का’। सच है, कहीं ‘द’ शब्द निकल गया तो कुछ न कुछ देना पड़ेगा और देना उनके लिए मरने के समान है। मौत को न्यौता कौन देना पसन्द करेगा ? कवि घासीराम जी इस भाव का वर्णन करते हैं:—

देवता को सुर औ असुर कहै दानव को,
दाई को सुधाय दार दैतिथे लहत है।

दर्पन को आरसी त्यों दाख को मुनक्का कहै,
दास को खवास आमखास विचरत है।

देवी को भवानी और देहरा को मठ सदा,
याही विधि घासीराम रीति आचरत है।

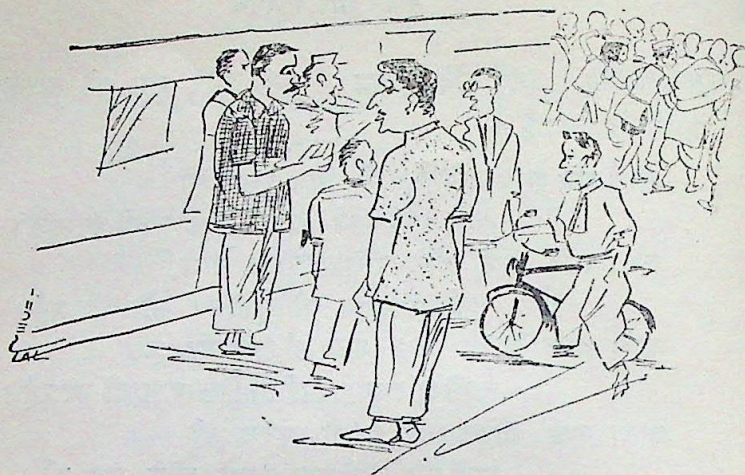
दाना को चबेना दीपभाला को चिराक जाल,
देबे के डरन कबौ ददा न कहत है।

अन्त में किसी दिल जले कवि के एक कवित्त का और रसास्वादन

कर लीजिए ! इसमें कवि महोदय ने दानी और सूम को तुलनात्मक आशीर्वाद दिया है :—

वाकें खूब खांड़ औ खवामें बिप्र वृन्दन कों,
 वाकें रोज आये दिना कोऊ मांदी पर रहै ।
 लला कवि वाकें भौन रसिक रसेस राजै,
 वाकौ भरो वैद औ हकीमन सौं घर रहै ।
 वाके वाके बाकी जोड़ एक सौ ही बैठे,
 न तो झूठ माने कोई तो हिसाब खातौ कर रहै ।
 दाता सूम दोउन में इतनो फरक रहे,
 वाकें होंइ दान पुन्न वाको कोऊ मर रहै ।

हम तो कविजी से असहमत हैं। हम तो भगवान से यही प्रार्थना करें कि कंजूस अधिक से अधिक दिनों जिन्दा रह कर अधिक से अधिक धन जोड़ सकें ।



गली या बाजार में गाली सम्मेलन हो तब आप देखिये,
श्रोताओं का अच्छा समुदाय इकट्ठा हो जाता है ।

गाली और कविता

आपने कभी गाली दी भी न हो तो ख़ाई अवश्य होगी । कविता आपने कभी लिखी न हो पर सुनी अवश्य होगी । लोग गाली को बुरी कहते हैं तथा कविता को अच्छी । कुछ समझ में नहीं आता । लोकप्रियता में दोनों बराबर हैं वास्तव में देखा जाय तो लोकप्रियता में तथा व्यवहार में गाली बाजी मार ले जायगी । जनता-जनार्दन के रक्त में जितनी गाली घुली मिली है उतनी कविता नहीं । बात अट-पटी अवश्य है किन्तु है सच !

ईसामसीह का सिद्धान्त है कि यदि तुम्हारे गाल पर कोई चाँटा मारे तो तुम दूसरा गाल उसके सम्मुख कर दो । पूज्य बापू ने भी अहिंसा ही का पाठ पढ़ाया । अब आप ही सोचिये कोई आपको तंग करता है, आपको नुकसान पहुँचाता है तो आप उसे मार तो सकते नहीं । अपने क्रोध का शमन कैसे करेंगे ? आवश्यकता आविष्कार की जननी है । किसी बुद्धिमान ने ही गाली देने का आविष्कार किया होगा । आज के युग में भो गाली ही एक अहिंसात्मक उपाय रह गया है जिसके द्वारा आप अपने विरोध को प्रकट कर सकते हैं, गाली देने के बाद चित्त

हलका हो जाता है। बिना शस्त्र के यदि शत्रु को धराशायी करना चाहते हैं तो आपको गाली रूपी अमोघ अस्त्र का ही सहारा लेना पड़ेगा।

कवि कविता कब लिखता है? उसके हृदय में जब प्रेम; घृणा अथवा करुणा का भाव प्रबल होता है। उस समय उसके हृदय से कविता फूट निकलती है। इसी प्रकार गाली प्रादुर्भाव भी तभी होता है जब हृदय में किसी प्रकार की चोट लगती है। दोनों का सम्बन्ध हृदयगत भावों से होता है। कविता में शृंगार रस प्रधान होता है, गाली में वीभत्स रस। गाली का वीभत्स रस जब चरमोत्कर्ष पर पहुँच जाता है तब करुणा-रस की निष्पत्ति होती है। “एकोरस करुणोऽयम्”।

कवि-सम्मेलन कहीं हो रहा हो तब कविता सुनने वाले इकट्ठे हो जाते हैं। इसी प्रकार कहीं गली या बाजार में गाली-सम्मेलन हो तब आप देखिए श्रोताओं का अच्छा समुदाय एकत्रित हो जाता है। कवि-सम्मेलन में तो कवि ही कविता पढ़ते हैं तथा श्रोता केवल सुनते रहते किन्तु जहाँ गाली-सम्मेलन हो रहा है वहाँ श्रोता थोड़े समय बाद ही स्वयं सम्मेलन में सम्मिलित होकर गाली प्रदान करने लगते हैं। “साधारणीकरण” की दृष्टि से गाली कविता से उच्च स्थान प्राप्त करने योग्य है।

काव्य अधिकांश कल्पना-प्रधान होते हैं। उनकी शब्द-शक्ति भी अपार होती है। कमल, फूल, भ्रमर, संध्या, प्रिय आदि कवि लोग बार-बार अपनी कविताओं में प्रयोग करते हैं। इसी प्रकार गाली देने में भी कल्पना के साथ-साथ यथार्थ का सामंजस्य हो जाता है। गाली-प्रदान-कर्ता की शब्दावली निश्चित होती है और वह उन्हीं विशेष शब्दों का बारम्बार प्रयोग करके नवीन-नवीन गालियों का सृजन करता है।

कवियों का हृदय अत्यधिक भावुक होता है। गाली-प्रदान-कर्ता का हृदय भी वैसा ही भावुक होता है। वह भी “वमुधैव कुटुम्बकम्” के सिद्धान्त पर विश्वास करता है। गाली-दाता भी इसी भावुकता के

वशीभूत होकर मनुष्यमात्र को अपनी पत्नी के भाई सदृश मानने में तनिक भी नहीं हिचकिचाया। उसका प्रेम तो केवल मनुष्यों तक ही सीमित नहीं रहता वे पशु-पक्षियों तक को अपनी पत्नी के भ्रातृ-मंडल में बहुधा सम्मिलित करते रहते हैं।

ऐतिहासिकता की दृष्टि से देखा जाय तो भी गालियों का प्रचलन पुराण-काल तथा महाभारत काल से मिलेगा। गुरु शिष्यों को वेद सिखलाते समय 'मूर्ख', 'शंख' आदि गालियों का प्रयोग करते थे। कर्ण तथा अश्वत्थामा के वार्तालाप में 'मूढ़', 'वाचाल' आदि गालियों का प्रयोग मिलता है। योगेश्वर भगवान् कृष्ण के लिए शिशुपाल ने अनेक गालियों का प्रयोग किया। इससे यह प्रमाणित होता है कि गालियों की स्वस्थ परम्परा महाभारत काल से अविच्छिन्न रूप से चली आ रही है।

आपको विद्वानों द्वारा रचित इतिहास-ग्रन्थों में औरंगजेब तथा 'लुई' जैसे सम्राटों के 'क्रूर' 'कपटी' 'स्वैरा' जैसे शब्दों का प्रयोग मिलेगा। जब इन शब्दों का प्रयोग ऐसे विद्वान् इतिहासकारों ने किया है तब आप इन शब्दों का प्रयोग अपने नौकर से, रिक्शावाले से, ड्राइवर से, पड़ोसी से अथवा उनके पिताओं से करते हैं तो क्या गुनाह करते हैं? यह तो आपकी शब्द-शक्ति पर निर्भर है। आप इनसे भी उच्चकोटि की गालियों का प्रयोग कर सकते हैं।

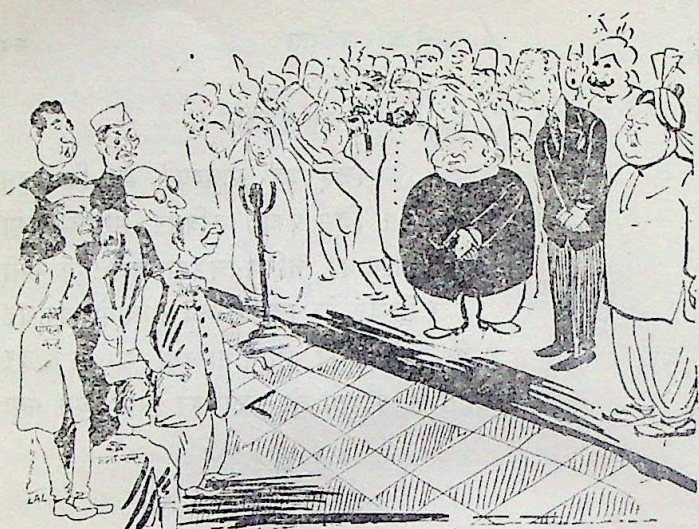
स्वास्थ्य की दृष्टि से भी गाली प्रदान करना लाभदायक है। इससे फेफड़े शक्तिशाली होते हैं; गाली देने वाले के अतिरिक्त गाली खाने वाले में सहन-शक्ति की वृद्धि होती है। क्या कविता सुनने वाले में भी कभी सहन-शक्ति की वृद्धि होते देखी है?

जहाँ तब 'विविधता' का प्रश्न है वह तो गालियों में प्रचुर मात्रा में मिलती है। इसका क्षेत्र असीम है। माता की स्नेहभरी गालियाँ, समुराल की संगीतमयी गालियाँ, वकीलों द्वारा प्रतिपक्षी को दी हुई कानूनी गालियाँ, पत्रकारों द्वारा प्रयोग की जाने वाली राजनैतिक गालियाँ, आलोचना में प्रयोग की जाने वाली मीठी चुटकियाँ, सास द्वारा

बहुओं को प्रयोग को जाने वाली गृहास्थिक गालियाँ ।

गाली-साहित्य के उत्थान के लिए यह आवश्यक है कि हम इसकी खोज वैज्ञानिक ढंग से करें । जिस प्रकार कविवर मैथिलीशरण गुप्त ने साहित्य की उपेक्षिता उर्मिला का चरित्र-चित्रण कर एक कमी को पूरा किया है, उसी प्रकार हिन्दी के स्वनामधन्य आचार्यों का यह पुनीत कर्तव्य हो जाता है कि कविता की भाँति गालियों का भी आदर कराये तथा उनके प्रति अज्ञान के कारण जो उपेक्षा का भाव बन गया है उसे दूर करें ।





“कोई नई कविता सुनाइये, यह बहुत बार हो चुकी है।”

रेडियो-रिपोर्ट

आगरा ऐतिहासिक नगर है। ‘पागलखाना’ यहाँ का विशेष आकर्षक है। कुछ लोगों ने एक बार योजना बनाई कि पागलों के मनोरंजनार्थ सरकारी तौर पर एक ‘अखिल-भारतीय कवि-सम्मेलन’ किया जाय। काफी धन व्यय किया गया। अर्ध-सरकारी कवि-सम्मेलन होने पर भी इसका ‘रिले’ किया गया। मैंने उसे लिपिबद्ध कर लिया है जो आपके सूचनार्थ प्रेषित है :—

“हम इस समय बिलोचपुरा के पागलखाने से बोल रहे हैं। कवि-सम्मेलन प्रारम्भ होने का समय हो रहा है। कविगण आने वाले हैं। पंडा पागलों के अतिरिक्त अन्य विशिष्ट सज्जनों तथा सज्जनियों से खजाखच भरा हुआ है। जनता शोर मचा रही है। संयोजकजी बार-बार निवेदन कर रहे हैं कि कविगण शीघ्र ही मंच पर पधारने वाले हैं।

ये देखिए; ‘कवि-सम्राट’ ‘बबूलजी’ मंच पर आ गये उनकी कुछ तड़का-भड़की संयोजक से हो रही है। सम्भवतः स्टेशन पर उनका

स्वागत करने कोई नहीं पहुँच सका। संयोजकजी उनसे प्रार्थना कर रहे हैं कि आपको जो कुछ कहना हो बाद में कह लीजिए पर वे कब मानने वाले हैं। येन-केन प्रकारेण उन्हें उस स्थान पर ले जाया जा रहा है जहाँ के निवास आदि का प्रबन्ध किया गया है।

लीजिए, जनता फिर चिल्लाने लगी, संयोजक परेशान हैं कि कवि लोग अभी तक मंच पर नहीं आये हैं। आइये, आपको तनिक वहाँ ले चलें जहाँ कवियों का ठहरने का प्रबन्ध किया गया है। यह देखिए कवि चौखटानन्दजी इस बात पर बिगड़ रहे हैं कि खड़ी क्यों नहीं मैगाई गई है। वे तब तक भोजन नहीं करेंगे जब तक खड़ी नहीं आ जायगी। कवि सम्राट 'खोखलानन्दजी' हठ किये बैठे हैं कि संध्या को वे केवल मूँग की दाल के चीले खाते हैं और कुछ नहीं खा सकते। दाल भिगो दी गई है, वह पियेगी तब कहीं अलग से चीले बन पायेंगे। लीजिए, कविवर 'गलानन्द' जी कह रहे हैं शीघ्र 'पेप्स' का एक बन्डल मँगवाइए जिससे वे अपना गला साफ कर लें। कार्यकर्त्ता परेशान हैं। पंडाल से फिर आदमी भागा हुआ आया है कि कवियों को शीघ्र पंडाल में ले चला जाय। समय बहुत अधिक हो चुका है। इधर एक दुघटना और हो गई। कवि 'मधु' जो मधु के लिए परेशान हैं उनको कार्यकर्त्ता गुपचुप समझा रहे हैं कि यह असम्भव है। वे स्पष्ट कह रहे कि बिना पिये वे कविता नहीं पढ़ सकते। बड़ी परेशानी है। पंडाल से एक कार्यकर्त्ता फिर भागा हुआ आया कि जनता उठ-उठ कर जाने लगी है। इधर कवि लोग काबू से बाहर हैं।

लीजिए, किसी न किसी प्रकार से सबको सन्तुष्ट करके कवियों को पंडाल में लाया जा रहा है। अहा हा, यह दृश्य देखने योग्य है? आगे-आगे संयोजक जी हैं और पीछे नाना प्रकार की वेशभूषाओं से सुसज्जित कविगण गजगामारूप में पधार रहे हैं। जनता ने पुनः ताली बजाना प्रारम्भ कर दिया है। पता नहीं चलता कि कवियों को सुनने की खुशी में ताली बजाई जा रही है अथवा कविगणों का शिवजी की बारात के रूप में आना जनता को तालियाँ बजाने को विवश कर रहा है।

यह देखिए, कवियों के पंडाल में घुसते ही विजली का 'पयूज' उड़ा गया। घोर अन्धकार हो गया है। विजली ठीक करने वाले को अंधेरे में आवाज दी जा रही है। पता लगा है वह किसी कवि महोदय की फरमाइश पर सिगरेट का पैकिट लेने बाजार गया हुआ है। लीजिए वह आ गया। विजली ठीक हो गई किन्तु माइक में न मालूम क्या गड़बड़ी हो गई। संयोजक जी कुछ कह रहे हैं। सुनाई नहीं पड़ रहा है। लोग चिल्ला रहे हैं "जोर से बोलिए साहब" दूसरी आवाज "बैठ जाइये साहब"। लीजिए, माइक भी ठीक हो गया है। कवि 'पोपलानन्दजी' 'माइक' पर आ गये हैं। माइक ऐसा लगा हुआ है जिस पर खड़े हो कर ही बोला जा सकता है। पोपलानन्द जी माइक के पास आकर बैठ गये हैं। माइक को नीचा कर दिया गया है। उन्होंने कविता प्रारम्भ ही की है कि जनता चिल्ला उठी "खड़े होकर सुनाइये"। "सूरत दिखाई नहीं पड़ती"। संयोजक जी उनके कान में कुछ कह रहे हैं। वे अब भी अडिग हैं। आखिरकार वे बिना ही कविता पढ़े अपने स्थान को लौट गये। कवियों में इस घटना से हलचल मच गई है। सब एक स्वर से कह रहे हैं। "यह हमारा सबका अपमान है। हमारी तबियत जैसे होगी उस तरह से सुनायेंगे। हम खरीदे हुए नहीं हैं।" ये लीजिए मंच पर से सब एक साथ उठकर चल दिये। संयोजक जी विनय कर रहे हैं बड़ी मुश्किल से वे फिर बैठ गये हैं। इस बार काँव "चौखटानन्द" माइक पर आये हैं। उन्होंने जैसे ही अपनी घिभी-घिसाई पुरानी कविता सुनाना प्रारम्भ किया कि जनता से आवाज आने लगी "कोई नई कविता सुनाइये, ये बहुत बार हो चुकी है"। चौखटानन्दजी उसी कविता को पढ़े चले जा रहे हैं। सम्भवतः उन पर कोई दूसरी कविता है ही नहीं। जनता चिल्लाती ही रही उतनी देर में वे अपनी कविता समाप्त कर नमस्कार कर चल भी दिये।

अब कवि गलानन्दजी माइक पर आ गये हैं वे कविता सुना रहे हैं। उनकी कविता के साथ जनता ताल देने लगी है। एक अजीब हँगाभा-सा मंचा गया है। वे चिड़चिड़ा गये हैं। जनता ताल देना बन्द नहीं कर रही है।

लीजिए किसी प्रकार से भी स्थिति सँभलने में नहीं आ रही है। संयोजक जी जनता से बार-बार प्रार्थना कर रहे हैं कि वह शान्ति से कवियों की कविता का रसपान करे। उन्हें उखाड़ने की चेष्टा न करे।

यह देखिए, कवि 'दुर्वाषा' जी मंच से उठकर बाहर जा रहे हैं। उनसे पछने पर पता चला कि उनका नाम अभी तक क्यों नहीं लिया गया ? वे बहुत दुःखी हैं। संयोजक जी उनसे कह रहे हैं उनका नम्बर भी शीघ्र आवेगा किन्तु वे तो जा ही रहे हैं। उनका क्रोध ठंडा नहीं हो पा रहा। क्या किया जाय ? आखिर वे चले ही गये। इस मंच पर कवियों में काना-फूँसी हो रही है कि पान शुरू में ही आये थे, थाल खाली पड़ा हुआ है। किसी को कोई चिन्ता ही नहीं है। ये लीजिए, संयोजक जी ने अपनी जेब से पैसे देकर पान मँगवाये हैं। उधर 'गलानन्द जी' माइक पर आ रहे हैं। वे कह रहे हैं चार गिलास पानी जल्दी मँगवाइये। ये लीजिए, पानी आ गया। वे एक गिलास पानी पीकर कविता पढ़ना प्रारम्भ कर रहे हैं। उधर एक कार्यकर्ता ने पान कवियों के सम्मुख पेश करना प्रारम्भ कर दिया है। वे कह रहे हैं ये पान बाँटना बन्द कर दो। मंच पर ये क्या बदतमीजी फ़ौला रक्खी है। बड़ी गड़बड़ी है। संयोजक जी परेशान हैं। क्या करें, क्या न करें।

यह देखिए, स्त्रियों में से एक बच्चे ने रोना प्रारम्भ कर दिया है। बच्चे की माता जी किसी भी हालत में जाने को तैयार नहीं हैं, उधर बच्चा अपना रोना किसी भी हालत में बन्द करने को तैयार नहीं है। अजीब कशमकश है। 'गलानन्द जी' संयोजकजी की ओर बार-बार संकेत कर रहे हैं। वे क्या करें।

ये लीजिए कवि-सम्मेलन समाप्त होने जा रहा है। सभापति जी अपना अन्तिम भाषण देने को माइक पर आ रहे हैं। इधर जनता खड़ी हो गई है। कोई उनका भाषण सुनने को तैयार नहीं है। संयोजक महोदय धन्यवाद देना चाहते हैं किन्तु विवश हैं।

रात के दो बज रहे हैं। एक अनार, सो बीमार। संयोजक जी एक हैं, कवि अनेक, अधिकतर रात को गाड़ों से वापिस जा रहे हैं। उनको

विदाई रूप में मार्ग व्यय तथा भेंट की रकमें दी जा रही हैं। प्रत्येक कवि महोदय की गाड़ी छूटी जा रही है उधर संयोजक जी के प्राण निकलने जा रहे हैं। कोई कह रहा है, तांगा मँगवाइये, कोई कह रहा है, रिक्शा मँगवाइये, जल्दी कीजिए। कुछ लोग जो आज नहीं जा रहे हैं उन्हें निवास-स्थान पर पहुँचाना है। ये लीजिए कविवर पोपलानन्द जी स्वयं ही बिस्तर उठाकर चल गये। वे नाराज हो रहे हैं। इनकी देर हो गई तांगा नहीं आया। आते वक्त कैसी खातिर हो रही थी अब जाते वक्त यह व्यवहार। इधर यह भगड़ा हो ही रहा है कि निवास-स्थान से एक आदमी भागा हुआ आया है कि जमीन पर कोई कवि सोने को तैयार नहीं है, अलग-अलग निवाड़ के पलंग चाहिए। ये लीजिए, संयोजक जी की आँखें सावन-भादों हो गईं। क्या करे बेचारा ? संयोजक जी अन्त में प्रतिज्ञा कर रहे हैं कि :—

“अब खाई सो खाई, अब खाऊं तो राम दुहाई”





...यदि इन्हें पता लग जाय कि अमुक व्यक्ति की पोल अमुक व्यक्ति जानता है तो तुरन्त बिना खाये-पिये वहाँ जायेंगे.....

जे बिनु-काज दाहिने बाँये !

ये दुनियां रंग विरंगी है इसमें तरह-तरह के जीव विचरते हैं। कबीरदासजी ने जो 'उलटबासियाँ' लिखी हैं वे उक्त भाव से प्रेरित होकर ही लिखी हैं। "वरसे कम्बल भीगे पानी"। कहीं वरसता है कम्बल और भीगता है पानी लेकिन इस दुनियां में कम्बल भी वरस सकता है और पानी भी भीग सकता है !

गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपने 'रामचरित-मानस' में प्रारम्भ में देवी-देवताओं की स्तुति तो की ही है किन्तु साथ में जलों तथा दुष्ट-प्रकृति वाले सज्जनों को भी साष्टांग नमस्कार किया है। वे कहते हैं :—

“बहु र वंदि खलगण सतिभाये,
जे बिनु काज दाहिने बाँये।
परहित हानि-लाभ जिन्ह केरे,
उजरे हर्ष विषाद बसेरे।
हरिहर यश राकेश राहुसे,
पर अकाज भट सहसबाहु से।

वन्दौ खल जस शेष सरोषा,
 सहस बदन वरणाहि पर दोषा ।
 वायस पालिय अति अनुरागा,
 होहि निरामिष कवहुं कि कागा ।
 उपजहि इक संग जल मांही,
 जलज जोंकि जिमि गुण बिलगाहीं” ।

वास्तव में तुलसीदास जी जैसे संत को इन लोगों की वन्दना करनी पड़ती तो साधारण व्यक्तियों का क्या कहना ? ये लोग गली-गली और घर-घर विराजमान हैं। ये मलेरिया की भाँति जगत में व्यापक हैं। “वसुधैव कुटुम्बुकं” इनके शब्दकोष में ‘वसुधैव दुश्मनं’ छपा हुआ है। “तमसोमा ज्योतिर्गमय” के स्थान पर “तमसोमा अन्धकारार्गमय” की प्रार्थना ये लोग करते हैं। दूसरे की प्रशंसा इन्हें ऐसे लगती है मानों इनके कोई सुई चुभो रहा हो।

नगर में एक प्रतिष्ठित विद्वान रहते हैं। उनकी सेवाओं को सारा हिन्दी संसार जानता है। उनकी जयन्ती मनाने की तैयारी की जा रही है इन्हें चैन नहीं है। ये जयन्ती बिगाड़ेंगे। उन विद्वान महाशयजी ने इनका कुछ नहीं बिगाड़ा है। सम्भवतः वे उन्हें जानते भी नहीं हैं। परन्तु इन्हें इससे क्या मतलब। वन्दे को तो फजीते में ही मजा है। ये इस जयन्ती से इतने परेशान हैं मानों इनका घर गिर रहा हो। उनकी भूठी बुराइयाँ लिख नोटिस छपा रहे हैं। जितना घृणित प्रचार मुख से सम्भव है वह दिन और रात कर रहे हैं। इनसे पूछा जा रहा है आप इतने परेशान क्यों हैं ? आदत से मजबूर हैं। आखिर इनके रोके जयन्ती नहीं रुकी लेकिन इन्हें अपनी असफलता पर तनिक भी रंज नहीं है। “कर्मण्येवाधिकारस्ते” सिद्धान्त के मानने वाले हैं। गीता के अनुसार कार्य किया “मा फलेषु कदाचन” फल में आसक्ति नहीं।

नगर में जितने सार्वजनिक कार्य-कर्त्ता हैं। उन सबकी जन्म-पत्री इनके कंठ में निवास करती है। किनके पितामह ने दिवाला निकाला था ? किनके पूर्वज जुआ खेलते थे, कौन रिश्वत देकर जेल से छूटकर आये थे ? इतिहास के प्रथम श्रेणी के विद्यार्थियों को भी इतने व्यौरे नहीं

याद होंगे जितने इन्हें हैं। ये तो इसी बात की खोज करते रहते हैं। जब तक जगते हैं दूसरों की निन्दा करते हैं। शायद सोते में भी कभी-कभी बड़बड़ाने लगते हैं। यदि इन्हें पता लग जाय कि अमुक व्यक्ति की पोल अमुक व्यक्ति जानता है तो तुरन्त बिना खाये-पिये वहाँ जायेंगे और पूर्ण जानकारी करके ही दम लेंगे। इन्हें कोई नेता ईमानदार नज़र ही नहीं आता। अच्छाई देखने को तो इनकी आँखें अन्धी हैं।

इनकी दृष्टि में नगर-पालिका में जन्म से आज तक कोई अच्छा अध्यक्ष नहीं आया। यदि अध्यक्ष की ऊपरी बेईमानी नहीं दिखलाई पड़ती तो ये कहेंगे अन्दर के कोई भ्रमेला है। अगर अध्यक्ष सेवा करता हुआ नज़र आयेगा तो कहेंगे ये तो वोटरों को धोका देने को पाखंड कर रहा है। इन्हें उन नौकरों के नाम याद हैं जो अध्यक्ष के घर काम करते हैं। इनका वश चले तो ये किसी को अध्यक्ष ही, न होने दें। पर क्या करें गंजे को खुदा ने नाखून ही नहीं दिये। एक नल यकायक फट गया। अध्यक्ष को इसका पता भी नहीं। इनके लिए एक सप्ताह के व्याख्यान का मसाला मिल गया। इनको भाषण देने के लिए मंच, पंडाल, माइक आदि की आवश्यकता नहीं है। ये तो "खुले रंच" पर अपना अभिनय करते हैं। नारदजी इनके आदर्श हैं, गुणों में नहीं अवगुणों में, इनका कार्य तो गली-गली घर-घर में निशुल्क दूसरों की बुराई करना है जो ये बखूबी व ईमानदारी के साथ करते रहते हैं।

एक स्कूल में प्रतिवर्ष एक विशाल कवि-सम्मेलन होता है। वहाँ के संयोजकगण महीनों परिश्रम करते हैं। रुपया इकट्ठा करते हैं। तब कहीं वह हो पाता है। हजारों आदमियों का निःशुल्क मनोरंजन होता है। इन्हें यह सहन नहीं होता। कवि सम्मेलन के संयोजकों पर अनर्गल लांछन लगा देंगे। स्थानीय कवियों में यह प्रचार करेंगे कि जब बाहर से आने वाले कवियों को पारिश्रमिक दिया जा रहा है तो तुम लोग भी लो वरना मत जाओ। अपने उर्वर मस्तिष्क से नाना प्रकार की बाधाओं का सृजन करेंगे कि कवि सम्मेलन सफल न हो। यदि ये हथकंडे भी न चले तो कवि सम्मेलन में बिना निमन्त्रण पाये पधारेंगे। आवाजकशी

करेंगे। बिजली के फ्यूज को उड़ाने की चष्टा करेंगे। कोई करतब बाकी नहीं छोड़ेंगे कवि सम्मेलन को असफल बनाने का। लीजिए कवि सम्मेलन समाप्त हो गया है। दुनियां कह रही है बड़ा अच्छा हुआ अब ये सबसे लड़ रहे हैं। इनका प्रिय वह है जो कवि सम्मेलन को सफल होने पर भी असफल कहे। वे आज रात को खाना भी नहीं खायेंगे। शायद सोवें भी नहीं।

उस दिन यहां संगीत सम्मेलन हुआ। ये परेशान थे। इन्हें किसी का गला पसन्द ही नहीं आया। लड़कियों का नृत्य हुआ उससे नगर का गौरव समाप्त हो गया। जितनी लड़कियों के मां-बापों को चिन्ता नहीं है उतनी इन्हें है। तरकारी लेने निकले थे, तरकारी न खरीद कर सीधे प्रेस गये। संगीत सम्मेलन के विरोध में एक नोटिस छपाया। प्रेस में ही बैठे रहे। छपाकर, स्वयं अपने कर-कमलों से उसे बांटकर घर पहुँचे। घर में सब परेशान थे, रोटी नहीं हुई, कोई चिन्ता नहीं। अपना आत्म-सन्तोष ही तो है।

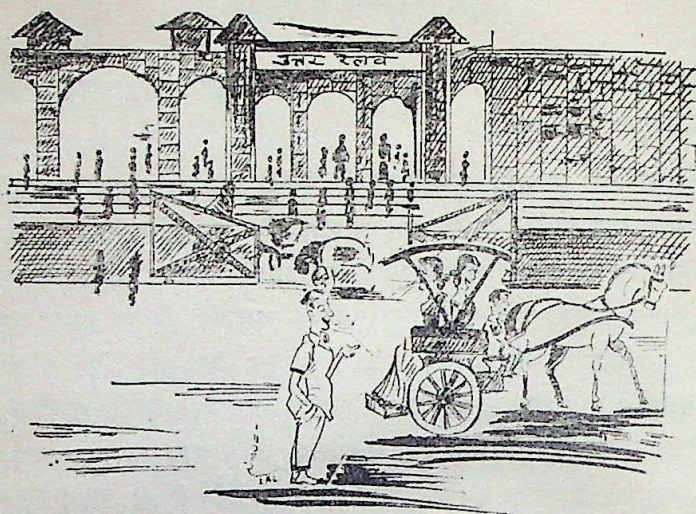
उस दिन जनाने अस्पताल का दरवाजा रात को बन्द था। उधर से मर्दाने अस्पताल में जाने से समय की बचत होती। चपरासी ने दरवाजा नहीं खोला। कहने लगे जब से ये नई लेडी डाक्टर आई है सब इन्तजाम बिगड़ गया है। वास्तव में ये तो व्यवस्था के ही कारण दरवाजा बन्द था किन्तु इन्हें तो दूसरे पर दोषारोपण करना। लेडी डाक्टर के खिलाफ प्रचार हो रहा है, यह भी कहीं-कहीं कह देते हैं कि चपरासी को रुपया दे देते तो दरवाजा खुल जाता। वहरहाल उनको एक अच्छा खासा विषय मिल गया।

किसी के यहाँ जन्मोत्सव की अथवा किसी के स्वागत-सत्कार में पार्टी हो इनका कलेजा मुँह को आ जाता है। यदि निमन्त्रण मिल गया तो बाह-बाह नहीं तो उस पार्टी का ऐसा ध्येय निकालकर लावेंगे कि मानों किसी जघन्यकारी उद्देश्य से वह पार्टी की गई हो। अजी लड़के के जन्मोत्सव का तो बहाना था, अमुक ने तो अमुक आफीसर को खुश करने के लिए ये पार्टी की। यदि पार्टी में आप पधारे हों तो दरवाजे से

निकलते ही भोज्य पदार्थों का 'डालडा घी' में बनने की घोषणा आपके श्रीमुख से की जायगी।

वास्तव में यदि तुलसीदासजी इनकी वन्दना प्रथम न करते तो न मालूम रामचरित-मानस पूरा हो पाता कि न हो पाता। समझदार लोग कोई भी अच्छा कार्य करने से पूर्व इनकी वन्दना अवश्य कर लेते हैं। यदि आपको कोई सार्वजनिक संस्था चलानी हो तो इनकी वन्दना पहले करिए नहीं तो आपको चन्दा हजम कर जाने का दोष ये तुरन्त लगावेंगे। यदि आप किसी शिक्षा-संस्था के प्रधानाचार्य हैं तो किसी भी उत्सव में इनको निमन्त्रण देना न भूलिए वरना आप अयोग्य तथा मूर्ख घोषित कर दिए जावेंगे। यदि आप लेखक या कवि हैं तो अपनी पुस्तक की एक प्रति स्वयं इनके घर जाकर हाथ जोड़कर सप्रेम (चाहे प्रेम न भी हो) इन्हें भेंट कर आइए वरना आपकी पुस्तक नकल की गई समझी जायगी। यदि आप कोई कवि सम्मेलन या संगीत सम्मेलन कर रहे तो यह जानते हुए भी कि ये निरक्षर महाचार्य हैं, इन्हें मंच पर मसनद के सिरहाने बैठाइए, इन्हें पान खिलाइए वरना आपका आयोजन एकदम असफल करार दे दिया जायगा। यदि आप कोई चुनाव लड़ने जा रहे हैं तो ये जानते हुए भी कि इनका कोई प्रभाव नहीं है, इनके यहां जाकर कहिए 'भगवन् आपकी सहायता पर ही मैं चुनाव लड़ रहा हूँ' जहां ये मिलें इनसे नमस्कार कीजिए चाहे ये प्रत्युत्तर में नमस्कार करें या न करें लेकिन इस पर भी ये गारंटी नहीं है कि यह फिर भी आपकी निन्दा करने से चूक जाएंगे।

अन्त में तुलसीदास जी के स्वर में स्वर मिलाकर हम भी ऐसे महा-पुरुषों के चरणों में अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।



“जब मैं घर लौटूँगी तो वहीं आपसे मिलूँगी। आप मेरे पिताजी से पूछते रहियेगा।”

प्रेम का प्रथम अध्याय

मैं विश्वविद्यालय में पढ़ता था। दाखिल हुए कई महीने हो गये थे। जीवन बड़ा नीरस था। जिन विद्यार्थियों की वहाँ की पढ़ने वाली लड़कियों से मित्रता थी वे बड़े मस्त रहते थे। उनकी खूब खुशामद हुआ करती थी। वे बड़े अकड़ के साथ चलते थे। मैं उन्हें जब देखता था तो कलेजे पर सांप लोटने लगता था। मैं वैसे ही नए विद्यार्थियों में था। नए विद्यार्थियों को पुराने मुँह नहीं लगाते थे। ‘रोमांटिक’ विद्यार्थियों के चेहरे पर सदैव वसंत खिला रहता था। हिम्मत करके एक दो विद्यार्थियों से पूछा भी कि कुछ नुसखे मुझे बता दो। कोई हाथ नहीं रखने देता था कह देते थे “बेटा पढ़ने आये हो, अपना काम करो इसमें क्या लोगे। ये तो वीरों के काम हैं। जाओ”

मैं यही सोचता रहता कि मुझमें क्या कमी है? वे लड़के स्वास्थ्य, रूप तथा पढ़ाई में मुझसे नीचे थे। उनमें से कोई तो वर्षों से फेल हो रहा था, दो एक को यूनीवर्सिटी अधिकारियों द्वारा दंड

भी मिल चुका था। लेकिन उनकी मस्ती अवश्यमेव स्पर्धा के योग्य थी। न मालूम उन 'कालिज-गर्ल्स' को उनमें क्या आकर्षण दिखलाई पड़ता था। मैंने भी "सुरैया-कट" बुश-शर्ट बनवाई। बालों में तेल न डालकर बालों को सूखा कर काढ़ने लगा ताकि वे हवा में उड़ें। 'लोफर शू' खरीदा। उसे पहनकर यूनिवर्सिटी जाने लगा। दुर्भाग्य ही कहूँगा कि सफलता पास आती दिखलाई नहीं पड़ती थी।

मेरे हृदय में कवि होने की आकांक्षा बचपन से ही थी। हिन्दी में कुछ कवियों की खातिर होते देखता तो यह इच्छा और भी प्रबल हो जाती। उनसे अपनी अभिलाषा प्रकट की तो वे भी कहने लगे कि मुझे पहले प्रेम करना सीखना चाहिए तभी आह और टीस भरी कवितायें मैं लिख पाऊँगा। मैं प्रेम अवश्य करना चाहता था किन्तु आलम्बन का अभाव बाधक था। इस उधेड़बुन में दशहरा की छुट्टियाँ आ गई और मैं घर वापिस आ गया।

भगवान बड़े दयालु हैं। बाबा तुलसीदास जी ने ठीक ही कहा है कि "जापर जाकर सत्य सनेह, ते ताहि मिले न कछु न सन्देह"। मैं छुट्टियों के बाद इलाहाबाद जा रहा था। स्टेशन पर दैवयोग से एक सज्जन मुझसे बोले "आप प्रयाग जा रहे हैं, यह लड़की भी वहीं पढ़ती है। मैं कार्यवश साथ नहीं जा पा रहा हूँ। रास्ते में तनिक ख्याल रखिएगा"। गाड़ी आ गई। मालूम पड़ा उनका नाम कुमारी सरिता था। उनके पूज्य पिता जी उन्हें टिकट दिलाकर जनाने डिब्बे में बैठाकर चले गये।

इधर गाड़ी चली उधर मेरे मन ने हवाई उड़ान ली। कल्पना कर रहा था कि विश्वविद्यालय में अब मेरी भी धाक जम जायगी मैं भी प्रेम का पाठ पूरा कर कवि बन जाऊँगा। जीवन सरस हो जावेगा। प्रेरणा भी मिलेगी। साथ में 'इंग्लिश-पिक्चर्स' जाया करेंगे। अन्य साथी जला करेंगे। जलो, हम क्या करें। मैं उनके होस्टल में पत्र भेजा करूँगा। उन पत्रों में आहों का रस तथा टीसों का आसव रहा करेगा। जब दो चार दिन मुलाकात नहीं हुआ

करेगी तो विरह में कातर होकर पत्र लिखा करूंगा। फिर उन पत्रों के उत्तर पाने के लिए नित्य डाकिये से भगड़ा करूंगा। डाकिया जब ये कहेगा कि बाबूजी आपका कोई पत्र नहीं है तो उसको डराऊंगा कि मैं उसकी शिकायत करने वाला हूँ, यदि वह अपने को बचाना चाहता है तो स्वयं ही मेरी प्रेमिका की ओर से मुझे उत्तर दे दे।

गाड़ी आगरा स्टेशन पर रुकी। मैं तुरन्त प्लेटफार्म पर उतरा वहां से दालमोठ तथा पेठा खरीदा तथा संगमरमर का एक छोटा सा ताजमहल। उनके डिब्बे के दरवाजे से यह सब उनकी भेंट चढ़ा दिया। “अरे, मिस्टर, आपने इतनी तकलीफ काहे को की।” इस वाक्य का उच्चारण अपने मधुर कंठ से करते हुए उन्होंने मेरी भेंट अंगीकार कर ली। उधर गाड़ी ने सीटी दे दी। मैं तुरन्त अपने डिब्बे की ओर भागा। जल्दी में चढ़ने के कारण एक सज्जन से मुठभेड़ हो गई। कारण यह था कि मैं सोचता जा रहा था कि यद्यपि मैंने अपनी “उनसे” अभी प्रेम का क, ख, ग, भी नहं कहा था किन्तु यह ताज-महल जो उनको दे आया था, यह सब मेरे मन की कह देगा। ताज-महल तो अमर प्रेम का प्रतीक है न? दूसरी ओर यह आशंका हो रही थी कि कहीं ‘वे’ यह न समझ लें कि मैं उनके शीघ्र स्वर्ग जाने की कामना करता हूँ तथा शाहजहां की भांति उनका बाद में मकबरा बनवाने का इरादा करता हूँ। यह संशय मेरे मन में घर कर गया। ज्योंही अगला स्टेशन आया मैं तुरन्त उतरा। एक लेमन लिया तथा लपका उनके डिब्बे की ओर। वे बिना संकोच के उसका पान करने लगीं।

मेरे मन का चोर बड़ी उथल-पुथल मचा रहा था। मैं उससे पहले प्रेम-रस पूर्ण कई पिक्चर्स देख चुका था। प्रेम की देवी का ध्यान रखकर मैंने कहा :—

“जी, वो ताजमहल मैं.....” मैंने कहा।

“अच्छा है, मैं अपने छोटे भाई को दूंगी, वह इससे खेलकर

बड़ा खुश होगा।” वे बोलीं।

“नहीं, मैं तो और बात कहना चाहता था,” मैं बोला।

“कहिए, क्या वह किसी और का है, क्या उसे वापिस करना है?” उन्होंने उत्तर दिया।

“क्या आपने “ताजमहल” देखकर कुछ सोचा?” मैंने संकोच-वश पूछा।

“कुछ समझ में नहीं आ रहा? क्या आप उसके पैसे चाहते हैं? मैं तो उस समय पूछना भूल गई थी, सोचा था, इलाहाबाद के स्टेशन पर दे दूंगी” उन्होंने उत्तर दिया।

गाड़ी सीटी पहले ही दे चुकी थी। उसने धीरे-धीरे चलना प्रारम्भ कर दिया। जल्दी में मैं दूसरे डिब्बे में चढ़ गया वर्ना प्लेटफार्म पर ही रह जाता। दिमाग बड़ा परेशान था कि उनके दिमाग में तो अभी ‘प्रेम’ के ‘जर्म’ बिल्कुल नहीं आ पाये हैं। ‘वे’ तो कुछ समझती ही नहीं हैं। कैसे उन्हें समझाया जाय। मैं तो दूसरा पाठ पढ़ाने गया था पर उन्हें तो प्रेम का पहला पाठ भी अच्छी तरह से याद नहीं है। क्या उपाय काम में लाया जाय?

बहुत सोच-विचार के पश्चात् एक योजना सूझी। निश्चय किया कि अपने हृदय की वेदना नेत्रों द्वारा प्रकट करूँगा। अब कठिनाई यह थी कि आँखों में आँसू कैसे आवें? स्त्रियों में तो प्रायः देखा है कि बिजली के करंट की तरह तुरन्त आँसू निकल आते हैं और तत्काल ही उनके मुख मंडल पर मुसकान भी आ बिराजती है। मैं इसी उधेड़बुन में था कि पास की सीट पर एक सज्जन सुपारी और पीपरमेंट मिलाकर उदरस्थ करने की तैयारी कर रहे थे। मैंने उनसे थोड़ा सा पीपरमेंट मांग लिया।

दुंडला स्टेशन पर ज्यों ही गाड़ी रुकी मैं ‘उनके’ डिब्बे की ओर लपका। वहाँ जाकर खड़ा हो गया। पीपरमेंट आँखों में पहले ही लगा गया था। अभ्रुप्रवाह होने लगा। उन्होंने ज्यों ही मुझे इस दशा में देखा तो कहने लगीं “आपकी आँखों से पानी गिरता है किसी डाक्टर

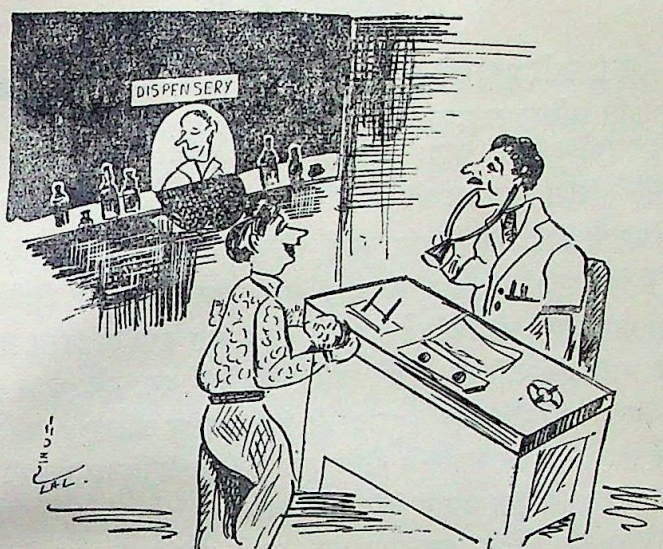
को दिखाइये। यह तो बड़ी बुरी बीमारी है।” मैं उनको इस उपदेश के लिये धन्यवाद देकर लौट आया। उनके हृदय रूपी रेगिस्तान को मैंने नखलिस्तान बनाने की बहुत कोशिश की लेकिन पूर्ण असफलता मिली।

इलाहाबाद तक मैं फिर किसी स्टेशन पर नहीं उतरा। मैंने निश्चय किया था कि शायद वे संकोच कर रही हैं। स्टेशन पर उतर कर उससे वहां का पता पूछ लूंगा तथा वहीं सम्पर्क स्थापित करूंगा।

इलाहाबाद स्टेशन भी आ गया। ज्यों ही मैं उनके डिब्बे की ओर गया। वहां उनकी सहेलियां पहले ही उनको ‘रिसीव’ करने आ चुकी थीं। खैर, मैं पीछे-पीछे उनके साथ चल दिया। वे अपना सामान एक तांगे में रखवा कर अपनी सहेलियों के साथ बैठ गईं। जब उनका तांगा चलने को हुग्रा मैंने उनसे पूछा “अब आपके दर्शन कहां होंगे?”

वे मुसकराकर बोलीं “जब मैं घर लौटूंगी तो वहीं आपसे मिलूंगी। आप मेरे पिता जी से पूछते रहिएगा।”

मेरे मन का महल ताशों के महल की तरह धराशायी हो गया। इस प्रकार मेरा प्रेम का प्रथम अध्याय समाप्त हुआ।



“अरे, तुम बच्चे को यहाँ क्यों ले आये ? ये तो बड़ी खतरनाक बीमारी से पीड़ित है। तुम तुरन्त घर चलो, मैं आता हूँ :”

डा० भ्राऊलाल जी

भारतवर्ष में इतनी बीमारियाँ नहीं हैं जितने इलाज करने वाले हैं। जनता-जनार्दन की सेवा करने वाले इन महानुभावों को डाक्टर, वैद्य तथा हकीम नामों से पुकारा जाता है। ये सब एक दूसरे की निन्दा करते हैं। इनमें से निन्दनीय कौन नहीं है यह कहना कठिन है। मोक्ष प्राप्त करने के लिए भारतीय दर्शन में भक्ति मार्ग, योगमार्ग, संन्यास इत्यादि अनेक मार्ग बताये गये हैं। इलाज कराने के लिए ऐलोपैथी, होम्योपैथी, आयुर्वेद आदि मार्ग हैं। प्राकृतिक चिकित्सा का भी मार्ग खुला है जिसके द्वारा आप भूखे पेट घण्टों जलविहार का आनन्द ले सकते हैं।

शिकारी जिस प्रकार शिकार की खोज में रहता है उसी प्रकार ये लोग मरीजों की फिराक में रहते हैं। आप अच्छे भले जाइये, आपको ये अपने उर्वर मष्तिष्क द्वारा किसी न किसी रोग से ग्रसित बता देंगे। जिस तरह शिकारी शिकार करते समय उसके औचित्य अनौचित्य

को नहीं देखता उसी प्रकार ये लोग भी मरीज की आर्थिक स्थिति देखना ईश्वर के प्रति अविश्वास समझते हैं।

“नीम हकीम, खतरे जान” लोकोक्ति का प्रारम्भ किसी न किसी भुक्तभोगी ने किया होगा। अपने देश में नीम हकीमों का अखण्ड साम्राज्य है। अंग्रेजी के कोई तीन अक्षर छांट लीजिये। उन अक्षरों को बड़े अक्षरों में लिखिए। हर अक्षर के बाद एक ‘फुलस्टाप’ लगा दीजिये। लीजिए, होमयोपैथी की डिग्री तैयार हो गई। वस आप निसंकोच अपने नाम के आगे उस डिग्री की पूंछ लगा लीजिये। बन गये आप पूरे होम्योपैथ। एक ‘स्टेपस्कोप’ (पुराना ही सही) खरीद लीजिए। मरीजों के उसे लगाइये। इसे लगाने से रौब बढ़ता है। इसकी चिन्ता मत करिये कि आपको उससे कुछ मालूम नहीं पड़ सकता।

चिकित्सक जितना पुराना होगा उसकी उतनी ही कदर होगी। कारण यह है कि उसे बहुत से मरीज मारने के बाद अनुभव हो जाता है। इसी प्रकार वकील भी पुराना ही पसन्द किया जाता है क्योंकि उसे भी अनेक मुकदमे बिगाड़ने का श्रेय प्राप्त होता है। चावल भी पुराना पसन्द किया जाता है। पुराना नींबू तो अचार न रह कर औषधि बन जाता है। डाक्टरी विभाग में नये लोग तो अखबार पढ़कर समय व्यतीत करते देखे गये हैं।

ये लोग बड़ी गम्भीर मुद्रा में रहते हैं। उससे मरीजों पर रौब पड़ता है। उनकी वेशभूषाओं का वर्णन कालिदास भी नहीं कर सके जो कि उपमा देने में सिद्धहस्त थे। आप वैद्यराजों को देखिये। मस्तक पर त्रिपुराङ्ग, लम्बा अंगरखा, नीची धोती। मैं एक वैद्यराज को जानता हूँ जो साक्षात् बुद्ध भगवान से दिखलाई पड़ते हैं। अंग्रेजी दवा देने वाले डाक्टरों को भी अपनी रूप-सज्जा में काफी व्यय करना पड़ता है चाहे घर में चूहे ही कबड्डी मचाते हों।

एक दिन मेरे बच्चे के गले में तकलीफ हो गई। दिवस का अवसान समीप था। मैं एक डाक्टर भाऊलाल जी साहब की शरण में गया। बच्चे को साथ ले गया था। वे तुरन्त मुझ पर झपटे। बोले

“अरे, तुम बच्चे को यहाँ क्यों ले आये। ये तो बड़ी खतरनाक बीमारी से पीड़ित है। तुम तुरन्त घर चलो मैं आता हूँ” मैं तुरन्त उनकी दया का रहस्य समझ गया। ऐसा प्रतीत होता था कि बच्चा मुझसे ज्यादा उन्हें प्रिय है।

भाऊलाल जी घर पधारे। यद्यपि घर से मेरा घर आधी फर्लांग से भी कम था, वे रिक्शा में पधारे।

नाना प्रकार के यंत्रों से जिसमें टार्च भी शामिल थी, उन्होंने बच्चे के गले का निरीक्षण किया। बोले, “भाई, घबड़ाने की बात नहीं है, मुझे ‘डिप्थीरिया’ का शक होता है।” मेरे पैरों के नीचे से जमीन खिसक गई। कोई बाजारू गोली मुझे लिखकर चले गये। जाते समय यह कह गये थे कि कल प्रातः असिस्टेंट सर्जन को लेकर आऊँगा तब निर्णय हो सकेगा।

रिक्शा के दाम सहित उनकी फीस उनके कर कमलों में दी। यद्यपि मुख से यही कहते रहे कि अरे इसका क्या होगा किन्तु बिजली के वेग से पाँच का नोट जेबस्थ कर लिखा।

प्रातः मैं उनके पास पहुँचा। वे कार लेकर मुझे अस्पताल ले गये। वहाँ से असिस्टेंट सर्जन के यहाँ नाश्ता किया। मैं बाहर बैठा रहा। फिर पान चबाते हुए तथा सिगरेट पीते हुए युगल-मूर्ति गज-गामा चाल से निकली। मुझे भी कार में बैठा लिया। यद्यपि यह कार में बैठाना कार की फीस मुझसे लेने का बीमा था। मेरे घर वे पधारे।

दोनों ने अभिनय प्रारम्भ कर दिया। इसके बाद बोले हम जा रहे हैं। एक पर्चा लिख दिया कि दवाई दुकान से ले आऊँ। जाते समय यह कह गये बीमारी खतरनाक है। दोपहर को लेबोरेटरी में जाँच करेंगे। शाम को निदान करेंगे। कार फीस सहित दोनों की फीस उनके चरणविन्द में अर्पित कर उन्हें विदा किया।

कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि मैं किस चक्कर में पड़ गया हूँ। घर की औरतों को यह भ्रम था कि बच्चे ने कोई बाल खाने के

साथ निगल लिया है। उन्होंने पानी को चाकू से काट कर बच्चे को पिलाया और थोड़ी देर बाद ही बच्चा हंसने बोलने लगा और खाना खाकर स्कूल चला गया।

बच्चे का रोग तो दूर हो चुका था किन्तु मेरा रोग दूर नहीं हुआ था। मैं इस नाटक के चरमोत्कर्ष को देखना चाहता था। मुझे डाक्टर साहब ने संध्या को बुलाया था। मुझे यह मालूम था कि यदि डाक्टर साहब के पास जांचने का यन्त्र होता तो अस्पताल के डाक्टर को क्यों साथ लाते। मैं दोपहर को ही अस्पताल की ओर चल दिया। रास्ते में उक्त डाक्टर साहब का कम्पाउण्डर अस्पताल से लौटता मिला वह मेरे साथ का पड़ा हुआ था। वह मुझे देखकर रुक गया। मैंने उससे पूछा :—

“कहां से आ रहे हो ?”

“अस्पताल से” वह बोला।

“कैसे गये थे” मैंने पूछा।

“तुम्हारे बच्चे के गले की जांच के लिए” वह बोला।

“तो क्या निकला” मैंने पूछा।

“भाई जांच से पता चला कि “डिप्थीरिया” के कोई कीड़े नहीं हैं”।

मैंने उन्हें धन्यवाद दिया। जाते समय उसने मुझे सौगन्ध दिला कर कहा कि मैं भाऊलाल जी से यह सब न बताऊं वरना वह नौकरी से निकाल दिया जायगा। मैंने ऐसा न करने का उसे वचन दिया और निश्चित होकर अपने घर लौट आया।

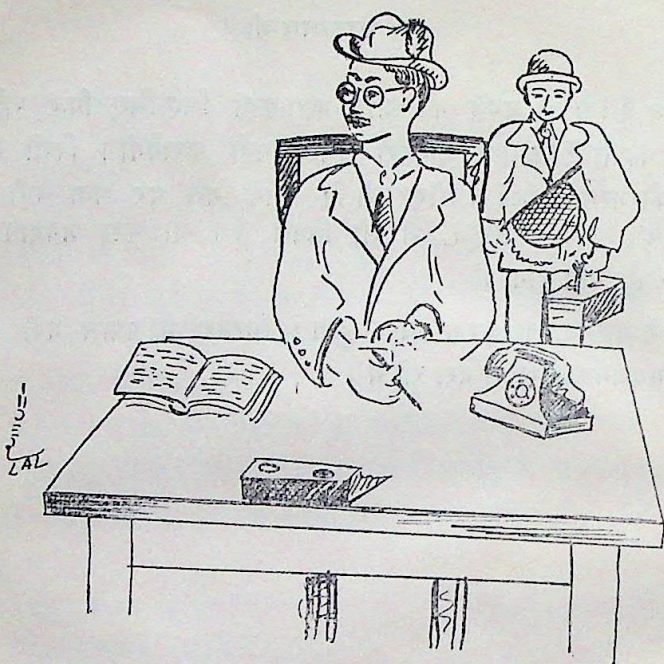
डाक्टर साहब के दिये हुए समय पर मैं उनके यहां हाजिर हुआ। वे अत्यन्त गम्भीर भाव से बोले “भाई, मैं तो तुम्हारा इन्तजार ही कर रहा था “डिप्थीरिया” की पहली स्टेज है। बीमारी गम्भीर है। मैं अभी चलूंगा और इंजेक्शन लगाऊंगा”।

मुझे पता तो सब था ही। मैंने उनसे नाटकीय ढंग से कहा।

“डाक्टर साहब, ये घर की औरतें तो बच्चे की जान लेने पर

उतारू हैं। वे तो बच्चे को जाने कहां-कहां लिए-लिए फिर रहीं हैं और कहती हैं कि हम डाक्टरी इलाज नहीं करायेंगी। किसी बाबा जी की भस्म ले आई हैं और उसे ही उसके गले पर लगा रही हैं। क्या करूं डाक्टर साहब, मैं तो विवश हूँ। जो कुछ भगवान को मंजूर है; वही होगा।”

मैं यह नाटक करके विदा हुआ। मिस्टर भाऊलाल मेरी ओर विस्मयजनक दृष्टि से देख रहे थे।



“गर्मियों में ‘हाथ के पंखे’ खरीदे गये उनकी अनुमानित कीमतों की लिस्ट क्यों नहीं मँगाई गई ?”

आडीटर साहब का शुभागमन

नगाड़े बजाने वाले को कितने लोग जानते हैं ? कभी ऐसे लोक-नृत्य का आयोजन करके देखिये जिसमें नगाड़े बजाने वाले की आवश्यकता पड़ती हो। तब आपको विदित होगा कि इन महाशय जी की कीमत क्या है ? आपके कलाकार, आपका चमकदार पंडाल, आपके दर्शकगण सब बैठे-बैठे सितारे गिनेंगे यदि ये महाशय जी ऐन वक्त पर नदारद हो जायँ। यद्यपि स्टेज पर उनका परिचय नहीं कराया जाता और न ये दर्शन ही देते हैं किन्तु पर्दे के पीछे इनका काय ऐसा महत्वपूर्ण होता है कि इनके नखरे बरदाश्त करने पड़ते हैं और इनके घर के चक्कर रिहर्सल कराने के लिए बार-बार लगाने पड़ते हैं।

इसी तरह कभी नाटक करके देखिये और प्रोम्पटर को फ्री पास देने में कंजूसी कर जाइये। आपके नाटक का कैसा नाटक हो जाता है ? प्रोम्पटर यदि गड़बड़ करना चाहे तो प्रत्येक नाटक 'चौपट-चपेट' हो सकता है। पर्दे के पीछे ये भी बड़ा महत्वपूर्ण कार्य करते हैं।

किसी भले आदमी के विरुद्ध झूठा नोटिस छपाकर उसकी छीछालेदार करने की चेष्टा कीजिये, तब आपको सी० आई० डी० के आदमी के महत्व का ज्ञान होगा। किस प्रकार गुप्त वेष में आपसे भेंट करते हैं तथा आपको कृष्ण मन्दिर भिजवाने की परी व्यवस्था करा देते हैं ?

इसी प्रकार कम्पाउन्डर साहब पर्दे के पीछे जो कार्य करते हैं वह भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। डाक्टर साहब तो परचे पर केवल नुस्खा लिख देते हैं लेकिन फिर काम कम्पाउन्डर साहब से पड़ता है। यदि चाहें तो परचे की सब दवायें डाल दें नहीं तो लाल, हरे अथवा पीले रंग के पानी से आपको शीशी भर दें। यह आपका भाग्य कि आप उसे पीकर अच्छे हो जायें या आपको भवसागर से पार होने का टिकट ही मिल जाय।

हमारे आडीटर साहब भी बड़े मजे के आदमी हैं। "जहां न पहुँचे रवि, वहां पहुँचे कवि।" ठीक इसी प्रकार हिसाब-किताब के जिस अंग पर किसी की दृष्टि न जाय, आडीटर साहब की दृष्टि तुरन्त चली जाती है। जिस प्रकार इन्स्पेक्टर साहब के आने का समाचार पाकर स्कूलों में भूकम्प का दृश्य दिखाई देने लगता है उसी प्रकार आडीटर साहब के आने की सूचना पाकर दफ्तर के बाबू लोगों को दिन में ही सितारे नजर आने लगते हैं। इनका पदार्पण सरकारी तथा गैर सरकारी सब संस्थाओं में होता है। स्कूल हो चाहे अनाथालय इनसे कोई नहीं बच पाता। इनका हिसाब से वैसा ही सम्बन्ध होता है जैसा विवाह योग्य युवती का विवाह से। जिस प्रकार विवाह योग्य युवती का विवाह कराना आवश्यक होता है उसी प्रकार हिसाब

दिखाने के लिए आडीटर साहब को बुलाना भी जरूरी होता है। आडीटर साहब का रौब बड़े बाबू ही नहीं मानते वरन उस विभाग के अध्यक्ष तक अपने नयनों की भाषा में उनसे प्रेम प्रकट करते रहते हैं। आफ़ीसर वर्ग ही क्या, बड़े-बड़े सेठ साहूकार तथा जनसेवक नेता भी इनको खुश करने के लिए आकाश-पाताल एक कर देते हैं।

ये लीजिये आडीटर साहब के शुभागमन का दिन निकट आ गया है, उनके ठहराए जाने के स्थान की सजावट की जा रही है, उनके लिए स्वादिष्ट भोजन की व्यवस्था की जा रही है। बड़े बाबू को याद है कि आडीटर साहब "लिफ्टन" की चाय के बजाय "ब्रुक-बौंड" अधिक पसन्द करते हैं। भोजनोपरान्त रबड़ी का सेवन भी वे डाक्टरी सलाह के कारण ही करते हैं। इन सब चीजों का इन्तजाम बिल्कुल ठीक कर दिया गया है। इसके अतिरिक्त उन्हें इस नगर के दर्शनीय स्थानों को दिखाने के लिए एक कार की व्यवस्था भी कर दी गई है। ये मेहमान साधारण मेहमान नहीं होते। "बलास-वन" के मेहमान होते हैं। अन्य मेहमान नाराज हो जायें तो किसी बड़े अनिष्ट की सम्भावना नहीं होती किन्तु यदि ये मेहमान नाराज हो गये तो आपकी नींद और भूख हराक कर देंगे।

आडीटर साहब का शस्त्र लाल पैसिल होती है। इसका प्रताप वही जान सकता है जिसके खाते पर वह चलाई गई हो। आप इसे साधारण लाल पैसिल न समझें जिससे विद्यार्थी नक्शों में रंग भरते हैं। आडीटर की पैसिल के लिए तो "केशव कहि न जाय का कहिए" ही कहना पड़ता है। जिस समय आडीटर साहब इसे चलाते हैं ऐसा मालूम पड़ता है मानों खंजर चला रहे हैं। ये लीजिए अग्रणीत निशान आपके हिसाब की किताबों में लग गये। कुछ नमूने देखिए:—

(१) अमुक तारीख की रोकड़ बही का जोड़ दो पाई कम क्यों किया है ?

(२) गर्मियों में "हाथ के पंखे" खरीदे गये उनकी अनुमानित

कीमत की लिस्ट क्यों नहीं मंगवाई गई ?

(३) जब दफ्तर में आग लग गई तो उसे बुझवाने के लिए पहले से उचित अधिकारी की आज्ञा क्यों नहीं ली गई ।

(४) दफ्तर के आंगन में जो गधा मर गया था उसके उठवाने का ठेका किसी अधिकृत ठेकेदार को क्यों नहीं दिया गया ? उसके उठवाने में जो मजदूरी दी गई वह अमान्य है ।

(५) प्रिन्सीपल साहब अखिल भारतीय शिक्षा सम्मेलन में भाग लेने गये । उनका यात्रा-व्यय उनके वेतन से काट लिया जाय, क्योंकि केवल सरकार द्वारा बुलाये जाने पर ही भत्ता स्वीकार किया जाता है ।

उपरोक्त आपत्तियां तो आडीटर-आपत्ति-सागर की थोड़ी सी बूंदें हैं । वे आपको आपत्तियों की लिस्ट देकर चले जावेंगे । ये आपकी सेवा पर निर्भर है कि इन आपत्तियों की संख्या बढ़ जाय या ये आपत्तियां समाप्त ही कर दी जायँ । चाहे ४ पाई की गलती के सम्बन्ध में लिखा-पढ़ी करने में ४ रुपए डाक-व्यय में लग जायँ लेकिन आडीटर साहब को तो सन्तुष्ट करना ही पड़ेगा ।

तनिक कल्पना कीजिए, यदि आडीटर न हों १० रुपए के खर्च पर कौन पाबन्दी लगावे ? जिस प्रकार निरीक्षक के डर से परीक्षार्थी नकल करने से रुक जाते हैं, इसी प्रकार आडीटर का डर रुपए की फिजूलखर्ची को रोकता है । आडीटर का कार्य चाहे किसी को कितना भी अप्रिय क्यों न लगे किन्तु यह कार्य है पुण्य का । आप ही सोचिए कि आडीटर साहब के पधारने का डर न हो तो क्यों ये भीमकाय हिसाब के पोथे तैयार करवाए जायँ ? क्यों न मित्र ठेकेदारों को मुंह मांगे दाम देकर काम कराये जायँ ? क्यों "एस्टीमेट" मांगने में समय खर्च किया जाय ? शिशिर की रातों में जाग जाग-कर तीन पाई के अन्तर को कौन मिलावे ? बजट की चिन्ता कौन करे ? दोस्तों की पार्टियां सार्वजनिक फंड से रोज क्यों न की जाया करें ? रसीदों के

भंभट में कौन पड़े ? सरकारी कार्य के बहाने तीर्थ स्थानों की यात्राएं क्यों न की जायं ।

आडीटर साहब रुपये-पैसे सम्बन्धी अनियमितताओं को ही नहीं देखते वरन् अन्य नियमों की अवहेलना पर भी तुरन्त कान पकड़ लेते हैं । आपने अपने प्रिय दामाद को नौकर रख लिया है ? आडीटर साहब की पैसिल अवश्य चलेगी । दामाद आपका है, आडीटर-साहब का नहीं । आपके दफ्तर का चपरासी जो आपके घर पर कार्य करता है, उससे आप तो प्रसन्न होंगे ही आपकी श्रीमती जी भी उस-पर पूर्ण कृपालु होंगी । श्रीमती जी की सिफारिश पर आप उस को तीन साल की वेतन वृद्धि एक वर्ष में ही दे देते हैं । आडीटर साहब फौरन पकड़ लेंगे । हो सकता है चपरासी को दिया हुआ अनियमित वेतन भी आपकी जेब से वसूल किया जाय । आपके दफ्तर में कुछ जगह खाली हुई हैं । आप विज्ञापन क्यों निकलवाए लगे ? “अन्धा बांटे रेवड़ी, फिर फिर घरकेन क्लूँ देहि ।” आप तो अपने मित्रों के भाई जमाइयों को ही रखना पसन्द करेंगे । लेकिन जनाब, आडीटर साहब दफ्तर में पानी तब ही पीवेंगे जब आप इन सब सज्जनों का विदाई उत्सव तुरन्त मना दें । और किसी को तो क्या कही जाय, दिन-रात आडीटर साहब की सेवा में लीन बड़े बाबू भी आडीटर साहब के शिकार हो जाते हैं । बड़े बाबू के रिटायर होते की तारीख छै महीने पहले ही निकल गई ! बाबू साहब तनखा भाड़े जा रहे हैं । दुनिया को तो वे रिटायर करते हैं उन्हें रिटायर कौन करे ?

ये लीजिए, आडीटर साहब ने लिख दिया कि बड़े बाबू का विदाई उत्सव शीघ्रातिशीघ्र शान से मनाया जाय । बड़े बाबू को दिया हुआ इतने दिनों का वेतन बड़े साहब जमा करें । बड़े साहब को भी आडीटर साहब के महत्व का ज्ञान हो गया । बड़े साहब का पारा चढ़ा रहता था, उनका “टैम्परेचर” भी नार्मल पर आ गया ।

आडीटर साहब गर्मियों में आडिट करने आये थे। पिछले पांच दिन से आडिट कर रहे थे। बिजली के पंखे की हवा ने उनके मस्तिष्क पर से पसीने की एक बूंद नहीं टपकने दी। ये लीजिये, आखिरी दिन क्या हो रहा है।

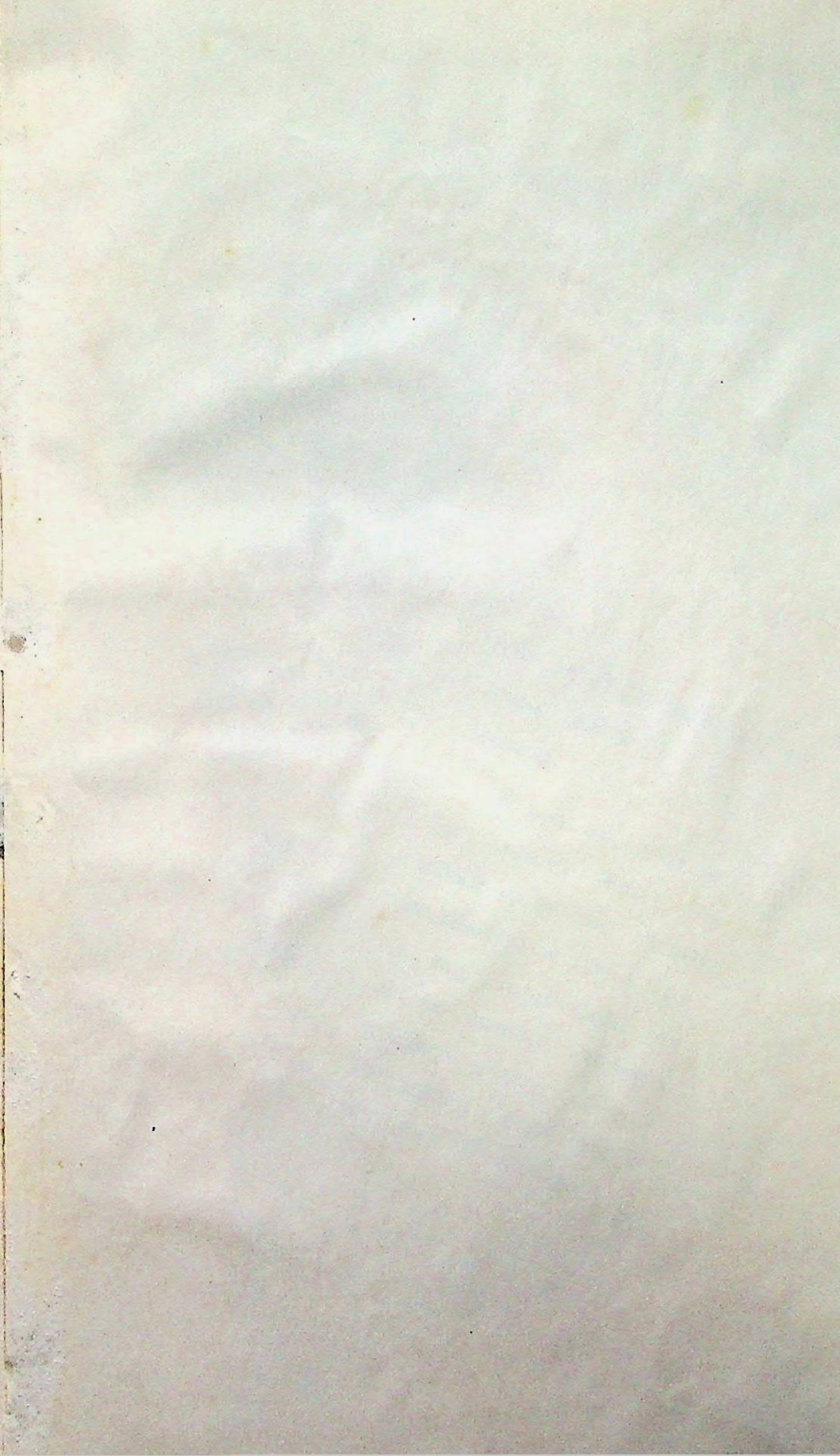
आडीटर साहब लिख रहे हैं “बिजली के पंखे बिना पूर्व स्वीकृति के क्यों लगवा लिये गये हैं? इनको तुरन्त उतरवा दिया जाय।” आपको आश्चर्य क्यों होने लगा? इसमें आडीटर साहब का क्या दोष? वाह साहब वाह, आप जरा सी हवा खिलाकर आडीटर साहब से अनियमित कार्य कराना चाहते हैं? नियम नियम है। वे कभी ऐसा नहीं होने देंगे। उन्होंने कब कहा था कि उनको बिजली के पंखों की आवश्यकता है?

आडीटर साहब का डर न हो तो टेलीफोन पर व्यवितगत बातचीत रोजाना हुआ करें। “ट्रंक-कालों” के बिलों को आडीटर साहब चश्मा उठाकर विशुद्ध नेत्रों से देखते हैं। वे लिखेंगे जरूरी खबर थी तो पहले से पत्र द्वारा क्यों नहीं दी गई? तार भेजने की क्या आवश्यकता थी और ट्रंक-काल तो केवल बड़े बाबू की लापरवाही के कारण करना पड़ा। ट्रंक-काल का बिल बड़े बाबू की तनखाह में से काटा जाना जाना चाहिए।”

आडीटर साहब जिन आपत्तियों के उत्तर में सन्तुष्ट हो जायें उनका अस्तित्व नष्ट करने का उन्हें पूर्ण अधिकार है। आडीटर साहब को सन्तुष्ट करना “तलवार की धार पे धावनो है।” आप लाख गिड़गिड़ावें “सरकार आगे से ध्यान रखवा जायगा” किन्तु ये पूर्णतः उनके मूड पर निर्भर है कि चाहें तो बड़े से बड़ा कसूर माफ, नहीं तो कान पकड़ने पर सजाये मौत। यह सब आपके ग्रहों पर निर्भर है। आपके अच्छे ग्रह हों और आडीटर साहब जो कि आपके स्थान पर आडिट भी कर रहे हैं तथा उन्हें अपने एक प्रियजन की लड़की के विवाह में भी सम्मिलित होना है। वे जल्दी-जल्दी में आडिट समाप्त कर रहे हैं। हो सकता है आप जिन गलतियों के पकड़े जाने से घबरा रहे हैं वे आडीटर साहब देख ही न पावें परन्तु ऐसा बहुत कम होता है।

आडीटर साहब ससाज के वस्तुतः एक आवश्यक अंग हैं। किन्हीं को अच्छे लगते हैं, किन्हीं को अप्रिय। वे ईमानदारी के साथी हैं, बेईमानी के जानी दुश्मन। उनका महत्व किसी भी इंजीनियर, राष्ट्र-सेवक, फिल्म अभिनेता, साहित्यकार तथा वैज्ञानिक से कम नहीं है। वे अपने क्षेत्र के बादशाह हैं। हम उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।





हमारे अभिनव प्रकाशन

उपन्यास-साहित्य

१. वंशवल्ली	:	उर्मिलाकुमारी ३.७५
२. घाटी की परियाँ	:	खलील जिब्रान ३.१२
३. धरती की पुकार	:	बलदेवदत्त शर्मा ३.००
४. पठान का हृदय	:	बलदेवदत्त शर्मा २.७५
५. खाट पर हजामत	:	रोशनलाल सुरीरवाला ४.३७

बाल-साहित्य

६. हमारे राष्ट्रपुरुष	:	विकास वाजपेयी १.५०
७. बोलने वाली गुफा	:	उर्मिलाकुमारी १.००
८. सुन्दर कहानियाँ	:	उर्मिलाकुमारी ०.७५
९. छल का फल	:	उर्मिलाकुमारी ०.७५
१०. तीन साहसी यात्री	:	उर्मिलाकुमारी ०.७५
११. सोना और यमुना	:	उर्मिलाकुमारी ०.७५
१२. आदर्श महापुरुष	:	उर्मिलाकुमारी ०.७५
१३. समय की सूझ	:	उर्मिलाकुमारी ०.७५
१४. साहस का फल	:	उर्मिलाकुमारी ०.७५
१५. सोने की चढ़की	:	कमला साँधी ०.७५

सभी प्रकार की हिन्दी पुस्तकें मिलने का स्थान

हिन्दी साहित्य संसार दिल्ली और पटना

N. B.—हमारा बृहद् सूचीपत्र मुफ्त मंगाइये ।